3. मूलभूत अवधारणाएँ–II
संस्था, समिति, संगठन, मूल्य एवं मानदंड

संस्था
(Institution)

सामान्य अर्थों में समिति एवं संस्था को एक ही माना जाता है लेकिन समाजशास्त्रीय दृष्टि से उन दोनों अवधारणाओं में आधारभूत अंतर है। मानव की असीमित आवश्यकताएँ होती हैं जिसकी पूर्ति मनुष्य स्वयं नहीं कर सकता है ऐसी स्थिति में अनेक व्यक्ति मिल जुलकर अपनी आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक संगठन बना लेते हैं। व्यक्तियों के इसी संगठन को समिति कहा जाता है। इन आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति निरंतर एवं विधिवत रूप से करने के लिए निश्चित प्रकार के नियम एवं विधियों व कार्यप्रणालियों का निर्माण कर उपयोग किया जाता है इन्हीं नियमों एवं कार्यप्रणालियों को संस्था कहा जाता है। उदाहरण के रूप में परिवार एक समिति है जिसका मुख्य लक्ष्य संतानोत्पत्ति, बच्चों का पालन पोषण और सदस्यों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करना है। इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए विवाह नामक संस्था पायी जाती है। प्रत्येक परिवार का एक संस्थात्मक रूप पाया जाता है। सदस्यों के संबंधों को नियमित करने, प्रस्थिति के अनुरूप कार्यों का निर्धारण करने तथा विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति एक–दूसरे के साथ सहयोग करने संबंधी निश्चित नियम तथा तरीके पाये जाते हैं। इन्हीं से मिलकर संस्था का निर्माण होता है।

मेकाइवर एवं पेज के अनुसार मंदिर, मस्जिद, चर्च तथा राज्य आदि का मूर्त स्वरूप समिति है जबकि इनमें से प्रत्येक से संबंधित नियमों, कार्यप्रणालियों की व्यवस्था संस्था है। इस प्रकार समिति एक मूर्त अवधारणा है क्योंकि समति का निर्माण व्यक्तियों से होता है और व्यक्ति दिखायी देते हैं वहीं संस्था अमूर्त अवधारणा है क्योंकि संस्था का निर्माण नियमों एवं कार्यप्रणालियों से होता है, जो कि दिखायी नहीं देते हैं इसी कारण से मेकाइवर एवं पेज ने कहा है कि ''हम समिति के सदस्य होते हैं न कि संस्था के''। हम किसी 'क्लब, संघ, राजनीतिक दल के सदस्य तो हो सकते हैं परंतु शिक्षा प्रणाली अथवा विवाह संस्था के नहीं।

संस्था का अर्थ– (Meaning of Institution)

संस्था वे उपकरण, नियम या कार्यप्रणालियाँ हैं जिनके द्वारा व्यक्ति, समितियाँ या संगठन अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं ये नियम, कार्यप्रणालियाँ समाज द्वारा मान्यता प्राप्त होती है विवाह, उत्तराधिकार, परीक्षा प्रणाली, प्रजातंत्र इत्यादि संस्थाओं के प्रमुख उदाहरण हैं।

संस्था की परिभाषाएँ (Meaning of Institution)

आगबर्न तथा निमकाफ (Ogburn and Nimkaff) के अनुसार– कुछ आधारभूत मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु संगठित एवं स्थापित प्रणालियों को सामाजिक संस्थाएँ कहते हैं।''

मेकाइवर एवं पेज (Maciver and Page) के अनुसार– संस्थाएं सामूहिक क्रिया की विशेषता बताने वाली कार्यप्रणाली के स्थापित स्वरूप या अवस्था को कहते हैं।''

बोगार्डस (Bogaurds) के अनुसार– एक सामाजिक संस्था समाज की ऐसी संरचना है जिसे मुख्यतः सुस्थापित प्रणालियों के द्वारा लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संगठित किया गया है।

किंग्सले डेविस (Kingsley Davis) के अनुसार–''एक संस्था को किसी एक या अधिक प्रकार्यों के चारों ओर निर्मित अन्तर्सम्बंधित जनरीतियों (लोकाचारों), रूढ़ियों और कानूनों के समुच्चय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि संस्थाएँ मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में समाज द्वारा स्वीकृत नियमों एवं कार्यप्रणालियों की संगठित व्यवस्था है।

संस्था की विशेषताएं (Characteristics of institution)

1. **सुपरिभाषित उद्देश्य** (Well defined objectives)– प्रत्येक सामाजिक संस्था के निश्चित एवं सुस्पष्ट उद्देश्य होते हैं जिनकी पूर्ति के लिए संस्था का निर्माण किया जाता है।
2. **स्थायित्व** (Permanency)–संस्थाओं का विकास एक दीर्घ अवधि के बाद होता है। जब कोई कार्यविधि दीर्घ समय तक समाज के व्यक्तियों की आवश्यकताओं को निरंतर रूप से पूरा करती रहती है तो उसे एक संस्था के रूप में स्वीकार किया जाता है।
3. **सुस्पष्ट उद्देश्य** (Well defined)–प्रत्येक संस्था के अपने एक या अनेक सुस्पष्ट निश्चित उद्देश्य होते हैं जो मानवीय आवश्यकताओं से संबंधित होते हैं। उदाहरण के रूप में जिस प्रकार शैक्षणिक संस्थाओं के कुछ सुस्पष्ट उद्देश्य होते हैं।
4. **सांस्कृतिक उपकरण** (Cultural equipments)– प्रत्येक संस्था से संबंधित भौतिक एवं अभौतिक उपकरण होते हैं जो संस्था के उद्देश्यों की दृष्टि से उपयोगी है। उदाहरण के रूप में हिन्दू समाज में विवाह के दौरान होम–वेदी, मंडप, कलश, धूप, नैवेद्य इत्यादि भौतिक उपकरण हैं एवं जप, मंत्र, इत्यादि विवाह संस्था से संबंधित अभौतिक तत्व है।
5. **प्रतीक** (Symbols)–प्रत्येक संस्था का अपना एक प्रतीक होता है जिसका भौतिक या अभौतिक स्वरूप हो सकता है जिस प्रकार मंगल कलश विवाह का प्रतीक

माना जाता है। इन्हीं प्रतीकों के माध्यम से संस्थाओं की पहचान होती है।

6. **परम्परा** (Tradition)–प्रत्येक संस्था की अपनी परम्पराएँ होती हैं जो कि लिखित या अलिखित होती है। ये परंपराएँ लोगों के व्यवहारों में अनुरूपता लाने में अपना योगदान देती है।

संस्थाओं के प्रकार– प्रत्येक समिति के एक या अनेक उद्देश्य होते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति सुचारू रूप से होती रहे इसके लिए प्रत्येक समिति के निश्चित नियम एवं कार्यप्रणालियाँ होती हैं जिनके माध्यम से उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। मेकाइवर एवं पेज के अनुसार प्रत्येक समिति का एक संस्थात्मक पक्ष होता है 'जिसके अभाव में समिति अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकती है विभिन्न विद्वानों ने तालिका के माध्यम से समिति, संस्थाओं एवं उनके विशेष हितों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है जो कि इस प्रकार है–

समिति (Association)	विशिष्ट संस्थाएँ (Characteristic Institutions)	विशेष हित (Special Interests)
परिवार	विवाह, घर, उत्तराधिकार,	घर, वंशावली, सुरक्षा
महाविद्यालय	व्याख्यान, परीक्षा–प्रणाली, स्नातकत्व	शिक्षण व्यावसायिक तैयारी
व्यापार	हिसाब–किताब की प्रणाली, संस्थापन, अंश–पूंजी	लाभ
व्यापारिक–संघ (मजदूर संघ)	सामूहिक सौदेबाजी, हड़ताल, धरना	नौकरी की सुरक्षा, मजदूरी–दरें, कार्य की दशाएं
चर्च (गिरजाघर) (धार्मिक समिति)	संप्रदाय, धर्म, भ्रातृत्व उपासना के तरीके	धार्मिक विकास
राजनीतिक दल	प्राथमिक इकाइयां, दल–यंत्र, राजनीतिक मंच	कार्यालय, शक्ति सरकारी नीति
राज्य	विधान, वैधानिक संहिता, सरकार के स्वरूप	सामाजिक व्यवस्था का सामान्य नियमन

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जहाँ विभिन्न प्रकार की समितियाँ पायी जाती हैं, वहाँ साथ ही विभिन्न प्रकार की संस्थाएँ भी। विभिन्न संस्थाओं को प्रमुखतः निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. सामाजिक संस्थाएँ (Social Institutions)
2. आर्थिक संस्थाएँ (Economic Institutions)
3. राजनीतिक संस्थाएँ (Political Institutions)
4. धार्मिक संस्थाएँ (Religious Institutions)
5. शैक्षणिक संस्थाएँ (Educational Institutions)
6. मनोरंजनात्मक संस्थाएँ (Recreational Institutions)

ये संस्थाएँ मनुष्य के विभिन्न हितों या उद्देश्यों की पूर्ति के माध्यम के रूप में कार्य करती है। इनमें से प्रत्येक प्रकार की संस्था के अंतर्गत नियम, विधि–विधान और कार्य–प्रणाली की व्यवस्था आती है।

संस्था का उद्विकास (Evolution of Institutions)

अमरीकन समाजशास्त्री समनर ने संस्था के उद्विकास को प्रकट किया है। वे लिखते हैं, संस्थाएँ जनरीतियों से प्रारंभ होती है। ये प्रथाएँ बन जाती है। जब प्रथाओं में कल्याण का दर्शन जुड़ जाता है तो वे लोकाचारों के रूप में विकसित होती है। इसके पश्चात् व्यवहार में लाये जाने वाले नियमों, निर्धारित कार्यों एवं उपकरणों द्वारा लोकाचार और भी निश्चित और विशिष्ट बन जाते हैं। इससे एक ढांचा निर्मित होता है और इस प्रकार एक संस्था पूर्ण हो जाती है।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी भी संस्था का प्रारंभ मानव की आवश्यकता को पूरा करने के विचार से होता है और जब वह विचार कार्यरूप में परिणित होता है तो उसे हम क्रिया कहते हैं। किसी भी क्रिया को बार–बार दुहराने पर वह व्यक्ति की आदत बन जाती है। यही आदत जब सारे समूह की आदत बन जाती है तब उसे जनरीति या लोकरीति कहते हैं। जब जनरीति में भूतकाल का सफल अनुभव जुड़ जाता है और समाज उसको मान्यता प्रदान कर देता है तो वह प्रथा का रूप धारण कर लेती है। जब इस प्रथा में सामूहिक स्वीकृति और सामूहिक कल्याण की भावना जुड़ जाती है तब उसे रूढ़ि या लोकाचार कहते हैं और लोकाचारों के चारों ओर जब एक ढांचा या कार्य प्रणाली विकसित हो जाती है तो वह एक संस्था का रूप धारण कर लेती है। संस्था के उद्विकास को हम इस प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं।

1. आवश्यकता पूर्ति से संबंधित एक उपाय	विचार या अवधारणा (Idea or Concept)
	↓
2. विचार+क्रिया की पुनरावृत्ति = व्यक्तिगत आदत	आदत (Habit)
	↓
3. आदत + सामूहिक पुनरावृत्ति = जनरीति	जनरीति (Folkways)
	↓
4. जन रीति + सामूहिक अनुभव + मान्यता = प्रथा	प्रथा (Custom)
	↓
5. प्रथा + समूह की स्वीकृति + जनकल्याणकारी भावना + बाध्यता = लोकाचार	लोकाचार या रूढ़ि (Mores)
	↓
6. लोकाचार + निश्चित नियम या कार्यप्रणाली + एक निश्चित ढांचा = संस्था	संस्था (Institution)

(1) विचार या अवधारणा (Idea or Concept)

मनुष्य की अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति के लिए वह कुछ–न–कुछ विचार और साधनों को ढूंढने का प्रयत्न करता ही रहता है। इस प्रकार आवश्यकता पूर्ति मानव को साधन ढूंढने हेतु विचार करने को प्रेरित करती है।

(2) वैयक्तिक आदत (Individual Habit)

आवश्यकता पूर्ति से संबंधित विचारों को जब व्यक्ति कार्यरूप में परिणित करता है तो उसे क्रिया कहते हैं। जब व्यक्ति किसी भी क्रिया या कार्य को बार–बार दुहराता है अथवा प्रयोग में लाता है तो उससे आदत का निर्माण होता है। इस प्रकार जब तक आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह किसी कार्य द्वारा सफलता प्राप्त करता है और भविष्य में भी वैसी ही आवश्यकता महसूस होने पर उसी कार्य को दुहराता है तो वह व्यक्ति की आदत बन जाती है। इस प्रकार आदत का निर्माण विचार और क्रिया को दुहराने से होता है।

(3) समूह की आदत या जनरीति (Group Habit or Folkways)

जब लोग किसी एक तरीके द्वारा व्यक्ति को अपनी आवश्यकता पूर्ति में सफल होते हुए देखते हैं तो उस तरीके को समाज के अन्य लोग भी अपना लेते हैं। जब समाज के अनेक व्यक्ति उस तरीके की बार–बार पुनरावृत्ति करते हैं तो वह क्रिया समूह की आदत या जनरीति बन जाती है। इस प्रकार जनरीति समूह की आदत का ही दूसरा नाम है।

(4) प्रथा (Custom)

जब जनरीति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है और उसमें भूतकाल का सफल अनुभव जुड़ा होता है तथा जिसे समाज द्वारा मान्यता प्राप्त हो जाती है तो वह प्रथा का रूप धारण कर लेती है।

(5) रूढ़ि या लोकाचार (Mores)

जब प्रथा में सामूहिक कल्याण की भावना जुड़ी होती है और उसे सारे समूह की स्वीकृति मिल जाती है तथा समाज के अधिकांश लोग उसका पालन करने लगते हैं तो वह रूढ़ियाँ लोकाचार का रूप धारण कर लेती है।

(6) ढांचा (Structure)

चूंकि रूढ़ियों और लोकाचारों को समाज के लिए कल्याणकारी माना जाता है, इसलिए उनकी रक्षा हेतु उनके चारों ओर कई छोटे छोटे नियमों, उपनियमों, कानूनों, एवं कार्य–विधियों का एक ढांचा खड़ा कर दिया जाता है, फलस्वरूप संस्था का जन्म होता है।

(7) संस्था (Institution)

संस्था विचार, आदत, जनरीति, प्रथा एवं लोकाचारों से निर्मित एक व्यवस्थित संरचना है जिसका उद्देश्य मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। संस्था नियमों की एक व्यवस्था अथवा कार्यप्रणाली होती है।

संस्था के कार्य व महत्व
(Functions and Importance of Institutions)

1. मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति एवं कार्य की दिशा (Institution fulfils Human Needs and directs his Functions)

प्रत्येक संस्था का विकास किसी न किसी मानवीय आवश्यकता को लेकर होता है। इसी कारण संस्थाओं को मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में देखा जाता है। जब संस्थाएँ आवश्यकताओं को पूरा करने का कार्य बंद कर देती है तो उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। यही बात स्पष्ट करते हुए मेकाइवर एवं पेज ने लिखा है कि सामाजिक संस्थाएं मनुष्य को पराजित करने के अपने अधिकार पर जीवित नहीं है अपितु केवल उनकी सेवा करने के लिए है और जब वे सेवा करना बंद कर देती है तो कोई भी प्राचीनता और कोई भी पवित्रता उन्हें मरने से नहीं बचा सकती। शिक्षण–संस्था, विवाह संस्था एवं परिवार नामक संस्था मनुष्यों की कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।

2. व्यक्तियों के कार्य को सरल बनाती है (Simplify the work of individuals)

संस्था मानव व्यवहार के सभी आचरणों को एक सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करके यह स्पष्ट करती है कि व्यक्तियों को क्या कार्य करना है अथवा उनके कार्यों की दिशा क्या होनी चाहिए। इस प्रकार संस्था कार्य करने की एक निश्चित विधि या प्रणाली का निर्धारण कर देती है। व्यक्ति साधारणतः इसी प्रणाली के अनुरूप कार्य करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में संस्थाएं व्यक्तियों का मार्ग दर्शन करती है, उनके कार्य को सफल बनाती है और उन्हें हर समय यह सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि उन्हें क्या करना और क्या नहीं करना है।

3. व्यवहारों में अनुरूपता (Conformity in Behaviour) –

संस्था से संबंधित एक निश्चित कार्य–प्रणाली, कुछ नियम एवं परंपराएँ होती हैं। व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन्हीं का सहारा लेता है। जब एक समूह के लोग अपनी कुछ विशिष्ट संस्थाओं के नियमों एवं परंपराओं को ध्यान में रखते हुए व्यवहार करते हैं तो उनके व्यवहारों में अनुरूपता या समानता होना स्वाभाविक है। अन्य शब्दों में संस्थाएँ, व्यक्तियों के व्यवहारों में अनुरूपता उत्पन्न करने में योग देती है।

4. व्यवहारों पर नियंत्रण (Control over the Behaviuour)–

संस्थाएं सामाजिक नियंत्रण का प्रमुख साधन है। प्रत्येक संस्था व्यक्तियों के कार्य की दिशा अथवा व्यवहार का एक

तरीका निश्चित कर उन्हें उसी के अनुरूप कार्य करने का आदेश देती है। जो व्यक्ति किसी संस्था के अंतर्गत मान्य व्यवहार मानदंडों के विरूद्ध आचरण करता है, उसे दंडित भी किया जा सकता है। परिवार और जाति नामक संस्थाएँ हजारों वर्षों से समाज के सदस्यों के व्यवहारों को नियंत्रित कर रही है।

5. संस्कृति की वाहक (Vehicle of Culture)

संस्था संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। संस्थाओं के माध्यम से ही संस्कृति की रक्षा होती है, उसे स्थायित्व प्राप्त होता है। परिवार संस्कृति के हस्तांतरण का एक प्रमुख साधन है। परिवार ही बच्चों का, समाज की परंपराओं, प्रथाओं, आचार–व्यवहार, खान–पान, धर्म आदि से परिचित कराता है और संस्कृति को स्थायित्व प्रदान करता है। समाज की धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, पारिवारिक एवं शैक्षणिक संस्थाएँ भी संस्कृति को हस्तांतरित करने का कार्य करती है।

6. स्थिति एवं कार्य का निर्धारण (Determination of Status and Role)–

संस्था व्यक्ति को स्थिति (पद) प्रदान करने और इससे संबंधित कार्य (भूमिका) का निर्धारण करती है। विवाह–संस्था के द्वारा एक पुरुष को पति की और स्त्री को पत्नी की प्रस्थिति प्राप्त होती है तथा साथ ही इनसे संबंधित कार्य भी निर्धारित होते हैं। एक महाविद्यालय में किसी को आचार्य की, किसी को व्यवस्थापक की, तो किसी को पुस्तकालयाध्यक्ष की स्थिति प्राप्त होती है और साथ ही इनसे संबंधित कार्य भी।

7. सामाजिक परिवर्तन में सहायक (Helpful in Social Change)–

संस्थाएँ प्रकृति से ही रूढ़िवादी होती है और इनसे शीघ्रता से कोई परिवर्तन नहीं आ पाता है लेकिन जब परिस्थितियाँ काफी कुछ बदल जाती हैं तो परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार संस्थाओं में बदलाव आना भी आवश्यक हो जाता है। ऐसी दशा में संस्थाएँ बदलती हैं। समय के साथ–साथ संस्थाओं को बदलने का प्रयत्न भी किया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन संभव हो पाता है। कभी–कभी संस्थाएं प्रगति में बाधक सिद्ध होती है। जब सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ बहुत कुछ बदल जाती हैं तो सामाजिक संस्थाओं को बदलना भी आवश्यक हो जाता है। परंतु रूढ़िवादिता के कारण ये साधारणतः नहीं बदलती हैं।

उपर्युक्त विवरण से इतना स्पष्ट है कि सामाजिक संस्थाएं अनेक उपयोगी कार्य करती हैं। ये कार्य व्यक्ति, समाज और संस्कृति की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है।

समिति और संस्था में अंतर
(Distinction between Association and Institution)

समिति	संस्था
1. समिति व्यक्तियों का एक संगठित समूह है।	1. संस्था नियमों, विधि–विधानों और कार्य प्रणालियों की एक व्यवस्था है।
2. व्यक्तियों के समूह के रूप में समिति को देखा जा सकता है। अतः यह मूर्त है।	2. संस्था अमूर्त है क्योंकि यह नियमों, कार्यप्रणाली आदि की व्यवस्था है जिसे देखा नहीं जा सकता।
3. समिति स्थापित की जाती है। यह बताया जा सकता है कि किस समिति की स्थापना किसने की।	3. संस्था का धीरे धीरे स्वतः ही विकास होता है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इसकी कब किसने उत्पत्ति की या विकास किया।
4. समिति अस्थायी होती है।	4. संस्था अपेक्षाकृत स्थायी होती है।
5. समिति का अपना एक नाम होता है।	5. संस्था का अपना एक प्रतीक होता है, जैसे चर्च का प्रतीक क्रास तथा किसी शिक्षण–संस्था का जलती हुई मशाल।
6. समिति व्यक्तिगत हित या कल्याण पर जोर देती है।	6. संस्था सामूहिक कल्याण पर जोर देती है।
7. समिति के कुछ औपचारिक नियम होते हैं जो साधारणतः लिखित रूप में होते हैं।	7. संस्था के अलिखित अनौपचारिक नियम जनरीतियाँ, प्रथाओं, परंपराओं और रूढ़ियों के रूप में होते हैं।
8. समिति की नियंत्रण शक्ति अपेक्षाकृत कमजोर या शिथिल होती है।	8. संस्था की नियंत्रण–शक्ति अधिक होती है। संस्था द्वारा मान्य रीति–नीति के विरूद्ध आचरण करना अनुचित और असामाजिक समझा जाता है।
9. समिति विशेष हितों या उद्देश्यों की पूर्ति करती है।	9. संस्था सामान्यतः मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति में योग देती है, जैसे संतानोत्पत्ति, भोजन आदि।

10. हितों की भिन्नता के कारण समितियों के कई प्रकार पाये जाते हैं। समिति के हितों की पूर्ति के लिए किसी न किसी प्रकार की संस्था का होना आवश्यक है।	10. संस्थाएँ विभिन्न समितियों के हितों की पूर्ति हेतु साधन के रूप में काम करती है।
11. समिति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित नहीं होती है।	11. संस्था एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है।
12. मनुष्य समितियों के सदस्य होते हैं।	12. मनुष्य संस्थाओं के सदस्य नहीं हो सकते हैं क्योंकि संस्था नियमों और कार्यप्रणालियों की व्यवस्था है।

समिति और संस्था दोनों ही अपने आप में साध्य नहीं होकर मानवीय हितों या उद्देश्यों की पूर्ति के माध्यम या साधन हैं।

हम समितियों के सदस्य होते हैं संस्थाओं के नहीं। (WE BELONG TO ASSOCIATIONS AND NOT TO INSTITUTIONS)

समिति और संस्था के उपर्युक्त विवेचन से यह भली भांति स्पष्ट है कि हम समितियों के सदस्य होते हैं, न कि संस्थाओं के। इस संबंध में भ्रम का मूल कारण यह है कि समिति और संस्था शब्दों का साधारणतः पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता है। समाजशास्त्रीय शब्दावली में समिति और संस्था का भिन्न भिन्न अर्थ है जैसा कि इनकी परिभाषाओं से स्पष्ट है। इन दोनों के अर्थ और विशेषताओं पर थोड़ा सा ध्यानपूर्वक विचार करने से भ्रम का निवारण स्वतः ही हो जाता है। फिर भी विद्यार्थियों की सुविधा के लिए यहां उपर्युक्त कथन को प्रमाणित करने की दृष्टि से कुछ तर्क दिये जा रहे हैं–

मेकाइवर एवं पेज के इस कथन से कि 'हम समितियों के सदस्य होते हैं, न कि संस्थाओं के'। समिति से मनुष्यों के एक संगठित समूह का बोध होता है जबकि संस्था में एक कार्य–प्रणाली का। परिवार, महाविद्यालय, धार्मिक–संगठन, राजनीतिक दल आदि व्यक्तियों के समूह के रूप में समितियाँ हैं और नियमों, विधि–विधाओं और कार्य–प्रणालियों के ढांचे के रूप में संस्थाएँ। जब समितियाँ बनायी जाती है तो उनके कार्य–संचालन के कुछ नियम, विधि विधान और कार्य–प्रणालियाँ भी विकसित हो जाती है जो संस्थाओं के नाम से जानी जाती है। मैकाइवर और पेज के अनुसार यदि किसी व्यवस्था पर संगठित समूह के रूप में विचार करते हैं तो वह एक समिति है, और यदि कार्य–प्रणाली के रूप में तो वह संस्था है। समिति से सदस्यता का पता चलता है, संस्था से कार्य–प्रणाली या सेवा के तरीके के साधन का।

हम यहां कुछ उदाहरणों द्वारा उपर्युक्त कथन को स्पष्टतः समझने का प्रयत्न करेंगे। महाविद्यालय एक समिति और संस्था दोनों ही है। जब हम महाविद्यालय पर एक संगठित समूह के रूप में विचार करते हैं अर्थात् प्राचार्य, विभागाध्यक्षों, प्राध्यापकों, अन्य कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों की दृष्टि से सोचते हैं तो यह एक समिति है जिसके कुछ उद्देश्य हैं। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए महाविद्यालय की शिक्षण की पद्धति, समय–सारिणी, नियम एवं आचरण संबंधी बातें तथा परीक्षा की एक प्रणाली आदि होते हैं। यह सब मिलकर महाविद्यालय को एक संस्था का रूप प्रदान करते हैं। अन्य शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि जब हम महाविद्यालय पर नियमों, कार्य–प्रणाली अर्थात् कार्य के ढंग, शिक्षण–पद्धति, परीक्षा–प्रणाली आदि के रूप में विचार करते हैं तो वह एक संस्था है। स्पष्ट है कि समिति मनुष्यों का एक संगठित समूह है जबकि संस्था नियमों एवं कार्य प्रणाली की एक व्यवस्था। हम मनुष्यों के समूह के ही सदस्य हो सकते हैं, नियमों एवं कार्य–प्रणाली की व्यवस्था के नहीं। हम महाविद्यालय रूपी समिति के प्राचार्य, प्राध्यापक, अन्य कर्मचारी या विद्यार्थी के रूप में तो सदस्य हो सकते हैं, परंतु महाविद्यालय रूपी संस्था अर्थात् नियमों, शिक्षण पद्धति, परीक्षा प्रणाली या संपूर्ण कार्य–प्रणाली के सदस्य नहीं बन सकते। हम मानव के रूप में मूर्त है, समिति भी संगठित समूह के रूप में मूर्त है। अतः मूर्त मानव, मूर्त संगठित समूह अर्थात् समिति का सदस्य तो बन सकता है, परंतु यह अमूर्त नियमों, विधि–विधानों एवं कार्य–प्रणाली अर्थात् संस्था (जो अमूर्त है) का सदस्य नहीं बन सकता।

महाविद्यालय के जैसे ही परिवार, आर्थिक संघ, धार्मिक संघ, राजनीतिक दल, राज्य, अस्पताल, लोक–सभा आदि में से प्रत्येक समिति और संस्था दोनों ही है। ये सब संगठित समूह भी है और इनके सबके अपने–अपने नियम, विधि–विधान एवं कार्य–प्रणालियां भी हैं। संगठित समूह के रूप में इनमें से प्रत्येक समिति है और नियमों व कार्य–प्रणाली की व्यवस्था के रूप में संस्था। हम समिति (संगठित समूह) के सदस्य तो हो सकते हैं और होते हैं परंतु नियमों एवं कार्य–प्रणाली की व्यवस्था (संस्था)के नहीं। इस प्रकार स्पष्ट है कि हम समितियों के सदस्य होते हैं, न कि संस्थाओं के।

समिति
(Association)

समाजशास्त्र में समिति शब्द का उपयोग विशिष्ट संदर्भ में किया जाता है। जिसका अपना एक विशिष्ट अर्थ है। मनुष्य

की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं जिसकी पूर्ति वह स्वयं नहीं कर सकता है अतः उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समाज के अन्य सदस्यों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार से मनुष्य पारस्परिक सहयोग के आधार पर अन्य लोगों के साथ मिल–जुलकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इससे स्पष्ट है कि कुछ लोग या अनेक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सहयोग करते हैं या संगठन बनाकर उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सहयोग करते हैं या संगठन बनाकर उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रयत्न करते हैं तो ऐसे संगठन को समिति कहा जाता है।

समिति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and definition of association)

समिति व्यक्तियों का समूह या संकलन है जो किसी विशेष हित या हितों की पूर्ति हेतु बनाया जाता है । राजनीतिक दल, कॉलेज, परिवार, स्कूल इत्यादि समितियाँ हैं जिनका निर्माण विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। साथ ही अनेक ऐसी समितियों का गठन किया जाता है जिन्हें तात्कालिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बनाया जाता है। ऐसी समितियों के उद्देश्य पूरे होते ही इनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है इस कारण से समितियों की सदस्यता ऐच्छिक होती है। फेयरचाइल्ड के अनुसार समिति एक संगठनात्मक समूह है जिसका निर्माण सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया है और जिसका अपना एक आत्मनिर्भर प्रशासकीय ढांचा तथा कार्यकर्त्ता होते हैं।

मोरिस गिब्सबर्ग– समिति एक–दूसरे से सम्बद्ध सामाजिक प्राणियों का समूह है। यह किसी निश्चित हित या हितों की पूर्ति हेतु बनाया एक सामान्य संगठन है।

मेकाइवर एवं पेज के अनुसार– सामान्य हित या हितों की पूर्ति के लिए दूसरों के साथ सोच–विचारकर संगठित किए गए समूह को समिति कहते हैं।

अतः समिति मनुष्यों के द्वारा विचारपूर्वक बनाये गये एक ऐसे संगठन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके एक या अनेक उद्देश्य होते हैं जिसकी अपनी एक कार्यकारिणी होती है।

समिति की विशेषताएँ (Characteristics of Association)

समिति की विभिन्न परिभाषाओं से इसकी कुछ विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। इनमें से प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

1. **व्यक्तियों का समूह** (Group of Individuals)– समिति का निर्माण दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।
2. **निश्चित उद्देश्य** (Definite purpose)– प्रत्येक समिति के अपने निश्चित उद्देश्य होते हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु दो या दो से अधिक व्यक्ति सहयोग करते हैं।
3. **विचारपूर्वक स्थापना** (Consciously established) – समिति विचारपूर्वक स्थापित किया गया एक संगठन है जिसकी स्थापना व्यक्तियों के द्वारा कुछ या अनेक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की जाती है।
4. **एक निश्चित संगठन** (Definite organization)– प्रत्येक समिति के अपने निश्चित उद्देश्य होते हैं इन उद्देश्यों की पूति हेतु एक निश्चित संगठन का निर्माण किया जाता है।
5. **नियमों पर आधारित** (Based on rules)– उद्देश्यों की पूर्ति हेतु समिति का अपना एक संगठन होता है जिसकी अपनी एक कार्यप्रणाली या नियमों की व्यवस्था होती है जिसके आधार पर समिति के विभिन्न सदस्य कार्य करते हैं।
6. **ऐच्छिक सदस्यता** (Optional membership)– किसी भी समिति का सदस्य बनना या नहीं बनना व्यक्ति की स्वयं की इच्छा पर निर्भर करता है। व्यक्ति अपने हित एवं रुचियों के आधार पर विभिन्न समितियों की सदस्यता ग्रहण करता है।
7. **अस्थायी प्रकृति** (Temporary nature)– समिति की स्थापना एक या अनेक विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की जाती है और जैसे ही इन समितियों के उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।
8. **मूर्त संगठन** (Concrete organization)– समिति से तात्पर्य व्यक्तियों के ऐसे संगठन से है जिसे कुछ उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संगठित किया गया है चूंकि समिति का निर्माण व्यक्तियों से होता है और व्यक्ति मूर्त दिखाई देते हैं अतः समिति एक मूर्त संगठन है।
9. **औपचारिक संबंध** (Formal relations)– चूंकि समिति की सदस्यता व्यक्ति अपने उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए ग्रहण करता है इस कारण से समिति में उद्देश्य महत्वपूर्ण होते हैं इस वजह से समिति के विभिन्न सदस्यों के मध्य औपचारिक संबंध पाये जाते हैं।
10. **समिति साधन है, साध्य नहीं है** (Association is a mean, not an end)– समिति का निर्माण उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है अतः व्यक्ति अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किसी समिति की सदस्यता ग्रहण करता है इस प्रकार से समिति में उद्देश्य व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण होते हैं न संबंध बनाना। अतः समिति की सदस्यता ग्रहण करना हित पूर्ति का एक साधन है।

समिति के प्रकार– समाज में व्यक्तियों के अनेक हित या उद्देश्य होते हैं इस कारण से समाज में अनेक प्रकार की समितियों का निर्माण होता है जिसे निम्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. हित आर्थिक समितियाँ, व्यापारिक समितियाँ– मजदूर

संगठन

2. सांस्कृतिक समितियाँ– लोक कला मंडल
3. शैक्षणिक समितियाँ– भारतीय समाजशास्त्रीय परिषद
4. राजनैतिक समितियाँ– राजनीतिक दल
5. मनोरंजनात्मक समितियाँ– संगीत मंडल, खेल मंडल

मेकाइवर एवं पेज ने अपनी पुस्तक सोसाइटी में हितों के आधार पर समितियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है–

हित (Interest)	समितियाँ (Associations)
1. अविशेषीकृत (Unspecialised)	वर्ग एवं जातीय संगठन, जनजातीय तथा सरल समाजों के अर्द्ध राजनीतिक संगठन, आयु समूह और लिंग समूह पितृसत्तात्मक परिवार
विशेषीकृत (Specialised)	
(1) द्वैतीयक (सभ्यता संबंधी या उपयोगितावादी) अ– आर्थिक हित	प्रकार– व्यापारिक तथा औद्योगिक, वित्तीय तथा कृषि संबंधी संगठन, व्यावसायिक एवं रोजगार संबंधी संगठन, रक्षात्मक एवं बीमा समाज, दान एवं मानवोपकारी समाज।
ब– राजनीतिक हित	प्रकार– राज्य, नगरपालिका, दल, मंडल, प्रचारवादी समूह।
स– तकनीकी हित	प्रकार– तकनीकी अनुसंधान तथा विभिन्न प्रकार की व्यावहारिक समस्याओं के समाधान हेतु समितियाँ
(2) मध्यस्थ शैक्षणिक हित	प्रकार– स्कूल, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय अध्ययन, समूह सुधार, गृह आदि।
(3) प्राथमिक सांस्कृतिक अ– सामाजिक संपर्क	प्रकार– क्लब, अन्य हितों की पूर्ति के लिए विभिन्न संगठन
ब– स्वास्थ्य व मनोरंजन	प्रकार– खेल कूद, नृत्य, व्यायाम आदि
स– प्रजनन	प्रकार– परिवार
द– धर्म	प्रकार– चर्च धार्मिक प्रचारवादी मठ आदि
य– सौन्दर्यात्मक हित, कला, संगीत साहित्य आदि	प्रकार– इनसे संबंधित समितियाँ
र– विज्ञान एवं दर्शन	प्रकार– विद्वत् समाज

यहाँ एक तथ्य का ध्यान रखना है कि एक ही समुदाय में अनेक समितियाँ पायी जाती हैं जैसे एक समुदाय है और उसमें आर्थिक संघ, राजनीतिक संगठन, मनोरंजन संघ, महिला संगठन तथा पंचायत आदि कई समितियाँ हैं। मैकाइवर ने बताया है कि समिति एक समुदाय नहीं है बल्कि समुदाय के अंतर्गत ही एक संगठन है।

संगठन
(Organization)

हमारे जीवन से जुड़े हुए कई स्त्रोत हैं, उन सभी का संबंध संगठनों से है। हम कैसी शिक्षा प्राप्त करेंगे, हमारी सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाएँ कैसी होंगी, पीने का पानी किस भांति मिलेगा, राष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था कैसे चलेगी, पर्यावरण पर नियंत्रण कैसे रखा जाएगा, ऐसी अनेकानेक घटनाएँ हैं जो संगठनों के कामकाज के अंतर्गत आती है। ये सब संगठन छोटे या बड़े एक प्रकार के समूह हैं।

सभी संगठन चाहे वे सार्वजनिक क्षेत्र या निजी क्षेत्र के हों या भाषाई, सांस्कृतिक, क्षेत्रीय हों, सभी में किसी न किसी तरह का अधिकारीतंत्र अवश्य होता है। ऐसी अवस्था में जब संगठन और उसकी विशेषताओं की चर्चा करते हैं तो अनिवार्य रूप से इन संगठनों को चलाने वाले अधिकारी तंत्र की चर्चा करना भी अनिवार्य हो जाता है।

संगठन का अर्थ और परिभाषा (Meaning and definition of Organization)

जानसन– ने समाजशास्त्र में संगठन के नाम पर औपचारिक संगठनों की चर्चा की है। उनका कहना है कि सामान्यतया जब हम औपचारिक संगठन की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य अधिकारीतंत्र (bureaucracy) से होता है। एक

व्यापारिक निगम वस्तुतः शासनतंत्र है। जब हम किसी भी संगठन की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य संगठन में होने वाली अन्तःक्रियाओं से होता है। इन अन्तःक्रियाओं के कुछ लक्ष्य होते हैं और अधिकारीतंत्र इसमें होने वाली अन्तःक्रियाओं में तालमेल स्थापित करता है। जॉनसन का कहना है कि संगठन का मुख्य आधार उसमें होने वाली अन्तःक्रियाएँ हैं। इन अन्तः क्रियाओं को जॉनसन तकनीकी भाषा में अन्तः क्रिया प्रणाली कहते हैं। अधिकतर संगठन काफी अंशों तक औपचारिक होते हैं। उनमें अन्तःक्रिया के अनेक पक्ष होते हैं और संगठन इन अन्तःक्रियाओं को अमल में लाने का प्रयास करता है। औपचारिक संगठन के प्रमुख उदाहरण सेना, सरकारी विभाग, राजनीतिक दल, व्यापारिक निगम, स्कूल, विश्वविद्यालय, अस्पताल और पुस्तकालय हैं। ऐसे समूहों का न केवल संगठनात्मक पक्ष संपूर्ण क्रिया प्रणाली से बँधा होता है वरन् प्रत्येक औपचारिक संगठन के सदस्यों के बीच अनौपचारिक संबंध भी स्थापित हो जाते हैं।

जॉनसन ने औपचारिक संगठन को परिभाषित करते हुए कहा है– संगठन अन्तःक्रिया प्रणाली है। प्रत्येक अन्तःक्रिया प्रणाली के कुछ लक्ष्य होते हैं जिनके लिये सदस्य व्यक्तियों की गतिविधियों में सामंजस्य बिठाना कुछ अंशों तक आवश्यक होता है।

एन्थोनी गिडेन्स इस विचारधारा के हैं कि दुनिया भर के देशों में औपचारिक संगठन महत्वपूर्ण द्वितीय समूह हैं। इस कारण इनकी व्याख्या विशद् और विस्तृत रूप में होनी चाहिये। वे आग्रहपूर्वक कहते हैं कि आज के समय में हमारी प्रत्येक श्वास–प्रश्वास औपचारिक संगठनों से उधार ली हुई है। आज हम पारस्परिक रूप से एक दूसरे पर जितने निर्भर हैं, उतने पहले कभी नहीं थे। ऐसे लोग जिन्हें हम कभी मिल नहीं पाते, जो हमारे लिये पूरी तरह गुमनाम हैं उनके द्वारा हमारी कई बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इनमें ऐसे लोग भी हैं जो हमसे हजारों किलोमीटर दूर बसे हुए हैं। संगठन ही इन बिखरे हुए लोगों में समन्वय स्थापित करता है। कुछ ऐसे ही संदर्भ में एन्थोनी गिडेन्स ने संगठन की परिभाषा दी है।

''एक संगठन लोगों की ऐसी वृहत् समिति है जिसकी गतिविधियाँ अवैयक्तिक संबंधों द्वारा संचालित होती है। यह संगठन निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति करता है।''

एन्थोनी गिडेन्स कहते हैं कि कई शताब्दियों तक परंपरागत समाजों में रीति–रिवाज और लोगों की आदतों के आधार पर समाज की व्यवस्था चलती रही, लेकिन आज के समाज संगठन के आधार पर चलाये जाने वाले समाज हैं। अब संगठनों को इस तरह बनाया जाता है कि वे निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति में कामयाब हो सकें। ये संगठन गगनचुंबी भवनों में काम करते हैं और इनका आकार चौंकाने वाला होता है। भारत सरकार का निर्वाचन भवन या उद्योग भवन इसका दृष्टांत है। निजी क्षेत्र में बड़े बड़े चिकित्सालय, उदाहरण के लिये एस्कोर्ट या जसलोक चिकित्सालय, जो कई मंजिलों के है, संगठनों के दृष्टांत हैं।

संभवतः मेक्स वेबर पहले सामाजिक विचारक थे, जिन्होंने औपचारिक संगठन की शाखा अधिकारीतंत्र के संदर्भ में की है। उनसे पहले जर्मन समाजशास्त्री लोरेन्ड्रा वान स्टैन तथा डीकेन्स ने भी संगठन और अधिकारीतंत्र पर एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की थी। इन दोनों लेखकों ने अधिकारीतंत्र के उद्गम और उसकी कार्यप्रणाली पर अच्छी जानकारी दी है लेकिन वेबर का कार्य वास्तव में एक अधिकृत कार्य है। उन्होंने अधिकारीतंत्र पर एक आदर्श प्रारूप रखा है। कई बार वेबर के इस योगदान को सही अर्थों में नहीं समझा जाता। वेबर ने किसी वास्तविक अधिकारीतंत्र का विवरण नहीं दिया है। उन्होंने तो केवल एक आदर्श प्रारूप के रूप में यानि अमूर्त रूप में अधिकारीतंत्र को रखा है। यदि वेबर द्वारा दी गयी संगठन की परिभाषा की बात करें तो स्पष्ट है, उन्होंने ऐसी कोई व्याख्या नहीं दी है। वे तो केवल यही कहते हैं कि संगठन लोगों का ऐसा समूह है जिसमें शक्ति को बाँटा जाता है। इसमें संपूर्ण अन्तःक्रियाएँ, प्रस्थिति के अनुरूप होती है। इस संगठन में व्यक्ति विशेष का कोई स्थान नहीं होता।

मिचेल्स ने संगठन और अधिकारीतंत्र की अवधारणाओं को दूसरे संदर्भ में रखा है। वे अधिकारीतंत्र पर जोर नहीं देते। उनकी व्याख्या तो यह है कि संगठन एक तरह की ऐच्छिक समिति है। संगठन की सदस्यता व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है। दूसरे शब्दों में, वह चाहे तो किसी संगठन का सदस्य बन सकता है। दृष्टांत स्वरूप वे कहते हैं कि प्रथम विश्व युद्ध के पहले यूरोप में राजनीतिक दलों और श्रमिक संगठनों की सदस्यता व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर थी। वास्तव में मिचेल्स की लोकप्रियता उनके कुलीनतंत्र के लौह कानून (Iron law of Oligarchy) के कारण है। वे यह मानकर चलते हैं कि सभी संगठनों के पीछे कुलीनतंत्र की भावना बलवती होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि सभी संगठनों की प्रवृत्ति किसी न किसी तरह के कुलीनतंत्र को विकसित करने की होती है। अतः मिचेल्स की परिभाषा में संगठन वे हैं जिनका मूलसंदर्श कुलीनतंत्र को विकसित करने की होती है। अतः मिचेल्स की परिभाषा में संगठन वे हैं जिनका मूल संदर्श कुंलीनतंत्र होता है।

औपचारिक संगठन की व्याख्या के मूल में अधिकारीतंत्र निहित हैं । वे सभी विचारक, चाहे लोरेन्झ वान स्ठैन, डीकेन्स, मेक्स वेबर, मिचेल्स या एन्थोनी गिडेन्स हों, जिन्होंने संगठन को परिभाषित किया है, इसके मूल में अधिकारीतंत्र हैं। संगठन यानी अधिकारीतंत्र, संगठन की तरह अधिकारीतंत्र भी द्वितीयक समूह है।

संगठन के लक्षण (Characteristics of Organization)

सभी दृष्टियों से एक संगठन अधिकारीतंत्र है, यदि संगठन है तो उसे बनाये रखने के लिए, कार्यरत रखने के लिये अधिकारीतंत्र की आवश्यकता अवश्य पड़ती है। अतः जब संगठन की विशेषताओं का विवरण देते हैं तब हमें यह

आग्रहपूर्वक कहना चाहिये कि संगठन अनिवार्य रूप से अधिकारीतंत्र है। इस संबंध में एक और बात कहनी चाहिये वह यह कि सामान्यतया समाजशास्त्रियों ने संगठन को प्रकार्यात्मक रूप से देखा है। इन प्रकार्यवादी समाजशास्त्रियों के लिए संगठन और कुछ न होकर एक व्यवस्था मात्र है। तात्पर्य यह है कि संगठन की जो अभिधारणा समाजशास्त्रियों में प्रचलित है, वह अनिवार्य रूप से प्रकार्यात्मक है। पीटर ब्लाऊ ने वेबर द्वारा निर्मित अधिकारीतन्त्र की जो व्याख्या की है कि हर दृष्टि से वेबर का अधिकारीतन्त्र प्रकार्यात्मक है। जब संगठन को प्रकार्यात्मक संदर्भ में देखा जाता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह एक व्यवस्था है जिसके भाग पारस्परिक रूप से एक–दूसरे से जुड़े हैं।

फिलिप सेल्जनिक ने संगठन की व्याख्या निश्चित रूप से एक व्यवस्था के रूप में की है। वे यह मानकर चलते हैं या उनकी यह धारणा है कि व्यवस्था के नाते संगठन की प्राथमिक आवश्यकता यह है कि वह अपनी निरंतरता बनाये रखे, किसी तरह जीवित रहे। फिलिप के शब्दों में–

किसी भी व्यवस्था की कुछ बुनियादी आवश्यकताएँ होती है और इन आवश्यकताओं में निश्चित रूप से व्यवस्था अपने आपको बनाए रखना चाहती है। संगठन के सदस्य इस दबाव में होते हैं कि वे इस भाँति काम करें कि व्यवस्था बराबर बनी रहे।

संगठन के लक्षणों को निश्चित बिन्दुओं में रखने से पहले हम एक और बात कहेंगे। संगठनों में प्रायः व्यावसायिक लोग भाग लेते हैं। वेबर ने एक स्थान पर तर्क दिया है कि अधिकारीतन्त्र मूलभूत रूप से यह मानकर चलता है कि संगठन पर विशेषज्ञों का नियंत्रण होगा। इस दृष्टि से अधिकारीतन्त्र का बहुत बड़ा लक्षण यह है कि इसमें विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते हैं और इसी कारण वे इस तन्त्र में विवेकशील होकर अपना काम करते हैं। अतः जब हम संगठन और अधिकारीतन्त्र की चर्चा करते हैं तब हमारा यह कहना है कि संगठन में विशेषज्ञों के शक्ति और प्राधिकार होते हैं। उदाहरण के लिये हम किसी कार्यालय के इंजीनियर, ओवरसीयर या डिस्पेच बाबू को देखें तो ये सभी अपने–अपने क्षेत्र में उस्ताद होते हैं यानी अपने काम को करने में कुशल होते हैं। इस दृष्टि से देखें तो कहना होगा कि संगठन से जुड़े हुए अधिकारीतन्त्र में छोटे–बड़े सभी तरह के विशेषज्ञ होते हैं। संगठन से जुड़ी हुई बुनियादी बातों की प्रारंभिक रूपरेखा देने के बाद हम संगठन के कतिपय सामान्य लक्षणों को निम्न बिन्दुओं में रखेंगेः

1. संगठन लोगों की विशाल समिति है (Organization is a Big Association of People)

कोई भी संगठन हो, उसमें लोगों की सदस्यता होती है। इन सदस्यों के संबंध संगठन के उद्देश्यों से जुड़े होते हैं लेकिन ये संबंध अवैयक्तिक होते हैं।

2. शक्ति एवं प्राधिकार का बँटवारा (Distribution of Power and Authority)

संगठन में काम करने वाले लोग सोपानिक व्यवस्था की तरह संगठन से जुड़े होते हैं। इनमें गैर–बराबरी होती है और इसीलिए इसे सोपानिक व्यवस्था कहते हैं। संगठन कैसा भी हो–छोटा या बड़ा–इसमें व्यक्तियों के प्राधिकार होते हैं। ये प्राधिकार गैर–बराबर होते हैं। अतः संगठन बहुत थोड़े में कहें तो कहना होगा कि शक्ति और प्राधिकार की एक ऐसी गठरी है जो अपने सदस्यों को उच्चोच्च व्यवस्था में रख देती है।

3. संगठन वस्तुतः अधिकारीतन्त्र है (Organization thus is Bureaucracy)

संगठन एक अधिकारीतन्त्र है। ऐसी अवस्था में इसके पीछे मूल धारणा यह है कि इसके सदस्य उसकी निरंतरता को बराबर बनाये रखने का प्रयास करते हैं। सरकार किसी की भी बने, कोई भी प्रधानमंत्री या मुख्य सचिव बने, सरकार का संगठन तो बराबर बना रहता है। अधिकारीतन्त्र और संगठन की यह प्रकृति अपने आप में जीवित रहने का प्रयास करती है।

4. संगठन प्रकार्यात्मक है, यह एक व्यवस्था है (Organization is Functional, it is a System)

संगठन की प्रकृति प्रकार्यवादी है। अधिकतर विचारकों के अनुसार संगठन की बुनियादी धारणा व्यवस्था सिद्धांत से जुड़ी है। मेक्स वेबर वस्तुतः प्रकार्यवादी थे और इसी तरह फिलिप भी प्रकार्यवादी थे। हर दृष्टि से संगठन की प्रकृति प्रकार्य और व्यवस्था से बंधी हुई है।

5. संगठन विशेषज्ञों का जमावड़ा है (Organization Consists of Experts)

बर्न्स, स्टालकर, फिलिप, जैसे कई समाजशास्त्री हैं जिनके अनुसंधान बताते हैं कि संगठन अपने मूल में विशेषज्ञों का जोड़ है। अमिताई एटिजिओनी ने एक जगह तर्क दिया है कि जब संगठन व्यावसायिक निर्णय लेता है तो इसका आधार विशेषज्ञों द्वारा दी गई तकनीकी सलाह है। यदि सार्वजनिक निर्माण विभाग किसी पुलिया के बनाने के लिए निर्णय लेता है तो इसके पीछे इंजीनियर का विशिष्ट ज्ञान होता है। कुछ इसी तरह चिकित्सालय, विश्वविद्यालय आदि के निर्णयों का आधार भी विशिष्ट और तकनीकी ज्ञान पर निर्भर होता है।

6. संगठन बना रहना चाहता है (Organization wants to Survival)

एक बार जब संगठन का आविर्भाव हो जाता है तब ताकतवर प्रवृत्ति अपने आपको टिकाए रखने की होती है। संगठन में भी पुनरावृत्ति, निरंतरता और जीवित रहने की क्षमता है। श्रमिक संगठन, राजनीतिक दल संगठन हैं। एक बार जब ये अस्तित्व में आ जाते हैं तो इन्हें समाप्त करना कठिन हो जाता है। यह संभव है कि समय की शक्ति के साथ संगठन की स्थिति खराब हो जाए, फिर भी बने रहने की इसकी क्षमता इसका शक्तिशाली लक्षण है।

7. संगठन में वैचारिकी होती है (Organization has Ideology)

कई बार संगठन के साथ में वैचारिकी को जोड़ा जाता

है। यह कहना आज एक फैशन बन गया है कि सिद्धांत का वैचारिकी के साथ कोई संबंध नहीं होता। इसके लिए यह तर्क दिया जाता है कि सिद्धांत मूल्य निरपेक्ष है। इसी कारण सिद्धांतों में कोई वैचारिकी निहित नहीं होती। एल्विन गुल्डनर इस तर्क से सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं कि कोई भी सिद्धांत मूल्य मुक्त हो, ऐसा नहीं है। जैसे समाजशास्त्र मूल्य मुक्त नहीं है, वैसे ही गुल्डनर कहते हैं कि संगठन भी मूल्य मुक्त नहीं है। संगठन कोई भी हो, कैसी ही इसकी संरचना हो, इसमें कोई न कोई वैचारिकी अवश्य होती है। गुल्डनर का तर्क यह है कि जब कोई व्यक्ति किसी सिद्धांत से प्रतिबद्ध होता है तो इसका प्रभावशाली कारण यह होता है कि अमुक सिद्धांत के प्रति व्यक्ति संवेगात्मक रूप से जुड़ा होता है। इस संवेगों का संबंध वैचारिकी से होता है। इसी कारण गुल्डनर का निष्कर्ष है कि औद्योगिक समाज में जो भी संगठन है वे किसी न किसी वैचारिकी से अवश्य जुड़े होते हैं।

8. उद्देश्य और संसाधन (Goals and Resources)—

संगठन का निर्माण शून्य में नहीं होता है। इसके लिए कुछ आधारभूत संसाधन होते हैं। संसाधन का मोल तौल करके ही संगठन के उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। ऐसा कहीं नहीं होता कि रेगिस्तानी इलाकों में कारखानों के श्रमिकों के संगठन बनाये जाये। श्रमिक संगठन बनने का बहुत बड़ा स्रोत कल–कारखाने होते हैं। इसी कारण से जिस देश या समाज में औद्योगिक संसाधन होंगे, वहीं कुछ निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संगठनों का निर्माण होगा। संगठन है, तो निश्चित रूप से उसके स्रोत और उद्देश्य होते हैं।

मूल्य एवं मानदंड
(Values and Norms)

सामाजिक मूल्य (SOCIAL VALUES)

सामाजिक मूल्य किसी भी समाज के प्रमुख तत्व होते हैं। सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही किसी भी समाज की उन्नति, अवनति अथवा परिवर्तन की दिशा निर्धारित होती है। सामाजिक मूल्यों को एक ऐसे पैमाने या मानक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनके आधार पर हम किसी व्यवहार, वस्तु, भावना, लक्ष्य एवं साधन को उचित एवं अनुचित, अच्छा या बुरा तथा सही या गलत ठहराते हैं। इस प्रकार मूल्य सामान्य मानक है। ये उच्चस्तरीय मानदंड कहे जाते हैं। स्वयं मानदंडों का मूल्यांकन भी मूल्यों के आधार पर किया जाता है। फिर भी इन दोनों में इतना घनिष्ठ संबंध है कि कभी कभी इन दोनों को एक ही समझ लिया जाता है। प्रत्येक समाज के अपने पृथक पृथक मूल्य होते हैं। इस प्रकार एक ही तथ्य से संबंधित सामाजिक मूल्य विभिन्न समाजों में भिन्न भिन्न होते हैं। सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं एवं कार्य–कलापों से संबधित मूल्यों में भी भिन्नता पायी जाती है। परिवार, शिक्षण संस्था, बैंक, राजनीति, आर्थिक जीवन, धर्म आदि से संबंधित मूल्यों में अंतर पाया जाता है। सामाजिक मूल्य समाज में लोगों के पारस्परिक संबंधों को निर्धारित एवं परिभाषित करते हैं। सामाजिक मूल्य समाज की ही उपज होते हैं। अतः समाज के सदस्य उनके प्रति जागरूक होते हैं, उनके अनुरूप व्यवहार करते हैं और उनके विपरीत आचरण करने वालों की निंदा एवं आलोचना की जाती है। सामाजिक मूल्य का संबंध किसी व्यक्ति विशेष से न होकर संपूर्ण समाज से होता है। ये समाज सभी सदस्यों के मूल्य होते हैं। इसलिए ये सभी व्यक्तियों के व्यवहारों को प्रभावित करते हैं और उन्हें एक विशेष ढंग से व्यवहार करने को प्रेरित और बाध्य तक करते हैं।

सामाजिक मूल्यों का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and definition of Social values)

सामाजिक मूल्यों को परिभाषित करते हुए राधाकमल मुकर्जी लिखते हैं, 'मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएँ तथा लक्ष्य है, जिनका आन्तरीकरण सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो प्राकृतिक अधिमान्यताएँ, मानक तथा अभिलाषाएं बन जाती है।''

जॉनसन के अनुसार, ''मूल्यों को एक धारणा या मानक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कि सांस्कृतिक हो सकता है या केवल व्यक्तिगत और जिसके द्वारा वस्तुओं की एक साथ तुलना की जाती है और वे एक–दूसरे के संदर्भ में स्वीकार या अस्वीकार की जाती है, वांछित या अवांछित, अच्छी या बुरी, अधिक या कम उचित पायी जाती है। जॉनसन का मत है कि मूल्यों के द्वारा सभी प्रकार की वस्तुओं, भावनाओं, विचार, क्रिया, गुण, पदार्थ, व्यक्ति, समूह, लक्ष्य एवं साधन आदि का मूल्यांकन किया जाता है।

फिचर के अनुसार, ''समाजशास्त्रीय दृष्टि से मूल्यों को उन कसौटियों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा समूह या समाज व्यक्तियों, मानदंडों, उद्देश्यों और अन्य सामाजिक सांस्कृतिक वस्तुओं के महत्व का निर्णय करते हैं। इस प्रकार मूल्य वे कसौटियाँ हैं जो कि संपूर्ण संस्कृति एवं समाज को अर्थ एवं महत्व प्रदान करती है।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक मूल्य वे मानक या धारणाएं हैं जिनके आधार पर हम किसी व्यक्ति के व्यवहार, वस्तु के गुण, लक्ष्य, साधन एवं भावनाओं आदि को उचित या अनुचित, अच्छा या बुरा ठहराते हैं। मूल्य एक प्रकार से सामाजिक माप या पैमाना है जिसके आधार पर किसी वस्तु का मूल्यांकन किया जाता हैं। इन मूल्यों को व्यक्ति समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखता है और आंतरीकृत करता है। तथा इन्हीं के अनुरूप आचरण करने की सोचता है। सामाजिक मूल्यों को प्राप्त करना व्यक्ति की इच्छा बन जाती है। सामाजिक मूल्यों का निर्माण संपूर्ण समूह एवं समाज के सदस्यों की पारस्परिक अन्तःक्रिया के दौरान होता है। अतः वे सारे समूह या समाज की वस्तु है। समाज एवं संस्कृति भिन्नता के कारण ही सामाजिक मूल्यों में भी मित्रता पायी जाती है। सामाजिक मूल्यों को और अधिक स्पष्टतः समझने के लिए हम यहां उनकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करेंगे।

सामाजिक मूल्यों की विशेषताएँ (Characteristics of social values)

1. सामाजिक मूल्य सामूहिक होते हैं (Social values are collective)—सामाजिक मूल्यों का संबंध किसी व्यक्ति विशेष से नहीं होता है परंतु ये सारे समूह एवं समाज की धरोहर होते हैं और सारे समूह की इन्हें मान्यता प्राप्त होती है। इनका निर्माण किसी एक व्यक्ति के द्वारा नहीं किया जाता वरन् ये सामूहिक अन्तःक्रिया की उपज एवं परिणाम होते हैं।

2. सामाजिक मूल्य सामाजिक मानक है (Social values are Social Standards)— मानक का तात्पर्य है जिनके द्वारा हम किसी वस्तु को मापते हैं। सामाजिक मूल्य भी मानक है जिनके द्वारा हम किसी वस्तु, व्यवहार, लक्ष्य, साधन, गुण आदि को अच्छा या बुरा, उचित या अनुचित, वांछित एवं अवांछित ठहराते हैं। इन्हें हम उच्चस्तरीय सामाजिक मानदंड कह सकते हैं।

3. सामाजिक मूल्यों के बारे में समूह में एकमतता पायी जाती है (There is consensus about Social Values in the Group)— समूह एवं समाज के सभी लोगों में सामाजिक मूल्यों के बारे में एकमतता पायी जाती है। वे सभी इन्हें स्वीकार करते हैं और मान्यता प्रदान करते हैं। अतः जब भी सामाजिक मूल्यों का उल्लंघन होता है तो सारे समूह द्वारा प्रतिक्रिया व्यक्त की जाती है।

4. सामाजिक मूल्यों के पीछे उद्वेग भावनाएँ होती हैं (Social values involve Emotions)— सामाजिक मूल्यों के साथ लोगों की भावनाएँ जुड़ी होती हैं। यही कारण है कि वे व्यक्तिगत हितों को तिलांजलि देकर भी उनकी रक्षा करते हैं। स्वतंत्रता के मूल्य की रक्षा के लिए भारतीयों ने हँसते–हँसते प्राणोत्सर्ग किया, सीने पर गोलियां झेलीं और जेल के सींखचों में बंद हुए। देशभक्ति के मूल्य की रक्षा के लिए ही लोग युद्ध में बलिदान देते हैं। सतीत्व की रक्षा के लिए भारतीय वीरांगनाओं ने जौहर किया। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि सामाजिक मूल्यों का संबंध भावनाओं से जुड़ा होता है।

5. सामाजिक मूल्य गतिशील होते हैं (Social values are dynamic)— सामाजिक मूल्य सदैव ही एक समान नहीं होते। समय एवं परिस्थितियों के साथ इनमें परिवर्तन आता रहता है। सामाजिक मूल्यों का उद्देश्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। अतः जब समाज की आवश्यकताएँ बदलती हैं तो सामाजिक मूल्य भी परिवर्तित होते हैं।

6. सामाजिक मूल्यों में विभिन्नता पायी जाती है (Social values are different)—प्रत्येक समाज के अपने मूल्य होते हैं जो दूसरे समाज के मूल्यों से भिन्न होते हैं। भारतीय समाज एवं पश्चिमी समाजों के मूल्यों में भिन्नता पायी जाती है। हम पर्दा प्रथा, जाति, अन्तर्विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध आदि प्रथाओं को उचित मानते रहे हैं किंतु पश्चिमी समाजों में इन्हें अनुचित माना गया है। इसी प्रकार से सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित सामाजिक मूल्यों में भिन्नता पायी जाती है। परिवार, विवाह, जाति, शिक्षा, व्यापार, खेल–कूद, मनोरंजन आदि सभी से संबंधित मूल्यों में भिन्नता पायी जाती है।

7. सामाजिक मूल्य सामाजिक कल्याण एवं सामाजिक आवश्यकताओं के लिए महत्वपूर्ण समझे जाते हैं (Social values are considered important for Social welfare and social needs)— सामाजिक मूल्य समूह के कल्याण एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है। इनके अनुरूप आचरण करने पर ही समूह संगठन, एकमतता एवं एकरूपता बनी रहती है। इसी कारण आवश्यकताओं की पूर्ति निरंतर होती रहती है।

मूल्यों का वर्गीकरण (Classification of values)

विभिन्न विद्वानों ने मूल्यों का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया जाता है। पेरी ने मूल्यों को नकारात्मक, सकारात्मक, विकासवादी एवं वास्तविक आदि भागों में वर्गीकृत किया है। कुछ विद्वान मूल्यों को सुखवादी, सौन्दर्यवादी, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक एवं तार्किक आदि भागों में बांटते हैं। स्प्रेंगर ने मूल्यों को सैद्धांतिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक आदि भागों में विभक्त किया है। सी. एम. केस (C.M. Case) ने सामाजिक मूल्यों को निम्नलिखित चार भागों में बाँटा है :

1. सावयवी मूल्य (Organic values)— इस प्रकार के मूल्यों का संबंध आग, पानी आदि से है।

2. विशिष्ट मूल्य (Specific values)— प्रत्येक व्यक्ति की अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ, रुचि एवं विचार होते हैं। उन्हीं के आधार पर वह किसी वस्तु का मूल्यांकन करता है, उदाहरण के लिए, विधवा पुनर्विवाह एवं बाल विवाह को कोई व्यक्ति उचित मानता है तो कोई अुनचित।

3. सामाजिक मूल्य (Social values)— कुछ मूल्यों का संबंध सामाजिक जीवन से होता है। सामाजिक व्यवहार, परंपराओं एवं आदतों के संबंध में प्रत्येक समाज में कुछ मूल्य पाये जाते हैं।

4. सांस्कृतिक मूल्य (Cultural values)— इनका संबंध संस्कृति से होता है। इनमें उपकरणों, प्रतीकों, सत्यता, सुंदरता एवं उपयोगिता आदि से संबंधित मूल्य आते हैं।

सामाजिक मूल्य का एक अन्य वर्गीकरण धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सौन्दर्यात्मक के रूप में किया गया है जिनका संबंध धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन एवं सौन्दर्य बोध से है। इन विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहारों एवं वस्तुओं का मूल्यांकन उस समाज में प्रचलित मूल्यों के आधार पर ही किया जाता है।

सामाजिक मूल्यों का महत्व (Importance of social values)

मानव की आधारभूत इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की संतुष्टि करने में मूल्यों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। डा.

मुकर्जी का मत है कि कोई भी समाज यदि अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है तो उसे व्यक्तित्व के सर्वोच्च मूल्यों की नियमित रूप से पूर्ति करनी चाहिए। मानव समाज व मानव कल्याण के लिए मूल्यों का पालन एवं संरक्षण आवश्यक है। दुर्खीम भी सामाजिक मूल्यों को सामूहिक जीवन के लिए आवश्यक मानते हैं। वे इन्हें सामाजिक तथ्य की संज्ञा देते हैं जो समाज की ही उपज है। दुर्खीम सामाजिक मूल्यों का पालन व्यक्ति के लिए बाध्यकारी मानते हैं। दुर्खीम के अनुसार सामाजिक मूल्य सामूहिक चेतना की उपज है, अतः व्यक्ति उनके सम्मुख झुकता है। सामाजिक मूल्य समाज में एकता पैदा करने का कार्य भी करते हैं। चार्ल्स बगल भी सामाजिक मूल्यों को समूह–कल्याण की भावना से ओत प्रोत मानते हैं। उनका मत है कि समूह में ही सामाजिक मूल्यों का विकास होता है, अतः उनके पीछे सामूहिक स्वीकृति होती है और व्यक्ति इन सामूहिक मूल्यों को अपने व्यक्तिगत मूल्य समझने लगते हैं। सामाजिक मूल्य समाज में एकता, संगठन एवं नियंत्रण बनाये रखते हैं। फिचर के अनुसार सामाजिक मूल्यों का महत्व या कार्य इस प्रकार है–

1. समाज में एकरूपता उत्पन्न करते हैं– सामाजिक मूल्य सामाजिक संबंधों एवं व्यवहारों में एकरूपता उत्पन्न करते हैं। सभी व्यक्ति समाज में प्रचलित मूल्यों के अनुसार ही आचरण करते हैं। इसके परिणामस्वरूप सभी के व्यवहारों में समानता उत्पन्न होती है।

2. व्यक्ति के लिए महत्व– सामाजिक मूल्यों का व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से भी घनिष्ठ संबंध है। सामाजिक मूल्य सारे समूह एवं समाज की देन होते हैं। व्यक्ति समाजीकरण द्वारा इन सामाजिक मूल्यों को आत्मसात् करता है और अपने व्यवहार, आचरण एवं जीवन को उनके अनुरूप ढालने का प्रयत्न करता है। इसके परिणामस्वरूप वह सामाजिक परिस्थितियों से अनुकूलन सरलता से कर लेता है तथा साथ ही अन्य सदस्यों के व्यवहार मानदंडों से भी एकरूपता स्थापित कर लेता है। इस कारण वह अपने को समूह से अलग न मानकर उसी का एक अंग मानने लगता है। व्यक्ति का समूह के साथ एकीकरण व्यक्ति की सुरक्षा एवं सामाजिक प्रगति दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

3. सामाजिक संगठन एवं एकीकरण– सामाजिक मूल्य समाज में एक विशिष्ट प्रकार के स्वीकृत एवं प्रतिभाजित व्यवहारों को जन्म देते हैं। समूह के सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे इन प्रतिमानित व्यवहारों के अनुरूप आचरण करे ताकि समाज में संगठन एवं एकीकरण बना रहे। समान आदर्शों, व्यवहारों एवं मूल्यों को स्वीकार करने के कारण आत्मीयता एवं सामुदायिक भावना का विकास होता है। समान मूल्यों में विश्वास करने वाले लोग अपने को अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक निकट समझते हैं। वे मिलकर कार्य करते एवं परस्पर सहयोग करते हैं। जॉनसन कहते हैं, ''मूल्य व्यक्ति को या सामाजिक अन्तः क्रिया की प्रणाली को एकीकृत करने में सहायक होते हैं।

4. सामाजिक क्षमता का मूल्यांकन– सामाजिक मूल्यों द्वारा ही समाज के व्यक्ति यह जानने में समर्थ होते हैं कि दूसरे लोगों की दृष्टि में उनका क्या स्थान है, वे सामाजिक संस्तरण में कहाँ स्थित है। समूह एवं व्यक्ति की क्षमता का मूल्यांकन सामाजिक मूल्यों के आधार पर किया जाता है।

5. भौतिक संस्कृति का महत्व बढ़ाते हैं– भौतिक संस्कृति के कुछ तत्व कुछ लोगों या समूह के लिए चाहे इतने अधिक महत्वपूर्ण न भी हो किंतु उनके पीछे सामाजिक मूल्य होते हैं। अतः लोग उन वस्तुओं को रखने में रुचि रखते हैं। उदाहरण के लिए, टेलीविजन, कार एवं टेलीफोन कुछ व्यक्तियों के लिए अधिक उपयोगी न होने पर भी वे उन्हें इसलिए रखना चाहते हैं कि इससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है क्योंकि सामाजिक मूल्य इन वस्तुओं को उपयोगी एवं प्रतिष्ठासूचक मानते हैं।

6. समाज के आदर्श विचारों एवं व्यवहारों के प्रतीक– सामाजिक मूल्यों में आदर्श निहित होते हैं। सामाजिक मूल्यों को सामाजिक स्वीकृति एवं मान्यता प्राप्त होती है। यही कारण है कि सामाजिक मूल्यों को उस समाज के आदर्श विचारों एवं व्यवहारों के प्रतीक माना जाता है। ये लोगों के विचारों और व्यवहारों को निश्चित एवं निर्धारित करते हैं।

7. सामाजिक भूमिकाओं का निर्देशन– सामाजिक मूल्य यह भी तय करते हैं कि एक व्यक्ति किसी विशिष्ट प्रस्थिति में किस प्रकार भूमिका निभायेगा। समाज उससे किस प्रकार का आचरण करने की अपेक्षा करता है। सामाजिक मूल्यों में अन्तर के कारण ही सामाजिक भूमिकाओं में भी अंतर पाया जाता है। भारत में पति पत्नी की भूमिका अमरीका व इंग्लैंड में पति–पत्नी की भूमिका से इसलिए भिन्न है कि इन देशों की मूल्य व्यवस्था में भी अंतर है और ये मूल्य ही भूमिका निर्वाह का निर्देशन करते हैं।

8. सामाजिक नियंत्रण– सामाजिक मूल्य सामाजिक नियंत्रण के सशक्त साधन हैं। ये व्यक्ति एवं समूह पर एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करने या न करने के लिए दबाव डालते हैं। समाज द्वारा मूल्यों के विपरीत आचरण करने वालों के लिए दंड एवं मूल्यों के अनुरूप आचरण करने वालों के लिए पुरस्कार की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार सामाजिक नियंत्रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

9. अनुरूपता एवं विपथगमन को स्पष्ट करते हैं– सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही हम सामाजिक व्यवहार को अनुरूपता तथा विपथगमन में बांटते हैं। जो व्यवहार सामाजिक मूल्यों के अनुकूल होते हैं उन्हें अनुरूपता एवं जो व्यवहार इनके विपरीत होते हैं, उन्हें विपथगमन कहते हैं। समाज में अनुरूपता एवं विपथगमन का अध्ययन सामाजिक मूल्यों के ज्ञान के आधार पर ही किया जा सकता है। इन्हीं के आधार पर हम अपराध की व्याख्या करते हैं। सामाजिक मूल्य

सामाजिक अस्तित्व के लिए आवश्यक है। अतः कोई भी समाज उनके उल्लंघन की आज्ञा नहीं देता। ऐसा करने वाले को दोषी ठहराया और दंड दिया जाता है। इस प्रकार सामाजिक विघटन को रोकने, सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने एवं पुनर्निर्माण के लिए सामाजिक मूल्य आवश्यक है।

इन उपयोगिताओं के होते हुए भी कभी–कभी सामाजिक मूल्य समाज में विघटन भी पैदा करते हैं। यदि वे समय एवं परिस्थिति के साथ परिवर्तित नहीं होते हैं या समाज के लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक होते हैं, तो लोग विद्रोही होकर ऐसे मूल्यों को तोड़ते हैं। उदाहरण के लिए, राजतंत्र में राजा के प्रति भक्ति दिखाना एक राजनीतिक मूल्य है जिसकी सभी नागरिकों से अपेक्षा की जाती है। किंतु यदि कोई राजा दुराचारी एवं शोषक हो तो ऐसी स्थिति में राजा के प्रति वफादारी के मूल्य का पालन नहीं किया जायेगा। लोग विद्रोही होकर उन मूल्यों को तोड़ेंगे। भारतीय समाज में प्रचलित बाल–विवाह, सती–प्रथा, पर्दा–प्रथा, जागीर प्रथा आदि से संबंधित पुराने रूढ़िवादी मूल्य वर्तमान परिस्थितियों से मेल नहीं खाते, उनका पालन पिछड़ेपन का सूचक माना जाता है। अतः लोग इनसे संबंधित पुराने मूल्यों को त्याग कर नवीन मूल्य ग्रहण करते जा रहे हैं। इस प्रकार से प्रत्येक समाज की दिशा निर्धारित करने में सामाजिक मूल्यों की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

सामाजिक मानदंड
(Social Norms)

समाज में व्यवस्था बनाये रखने के लिए सामाजिक मानदंडों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव समाज व पशु समाज में सबसे बड़ा अंतर यह है कि मानव के पास संस्कृति है जबकि पशुओं के पास नहीं है। मानव न केवल संस्कृति को अपने जन्म के समय विरासत में प्राप्त करता है बल्कि वह स्वयं संस्कृति का निर्माता भी है। पशुओं का व्यवहार जहाँ एक ओर उनकी शारीरिक आवश्यकताओं से प्रेरित होता है वहाँ दूसरी ओर मानव के व्यवहार को संस्कृति प्रतिक्षण नियंत्रित करती रहती है। पशुओं का व्यवहार मानव की भांति संस्कृति द्वारा निर्देशित नहीं होता वरन् मूल प्रवृत्तियों द्वारा होता है। मानव को अपनी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति के लिए संस्कृति द्वारा निर्धारित मार्ग का अनुसरण करना होता है। हम अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संस्कृति द्वारा अनुमोदित जिन तरीकों को अपनाते हैं वे ही मोटे अर्थों में सामाजिक मानदंड है। सामाजिक मानदंड समाज में विपथगामी व्यवहार को नियंत्रित करते हैं तथा सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने में सहायता पहुँचाते हैं। यदि सामाजिक मानदंड का अस्तित्व नहीं हो तो समाज में अव्यवस्था फैल जाएगी। मनुष्य समाज अपनी सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए और नयी नयी परिस्थितियों और समस्याओं का हल खोजने के लिए समय–समय पर मानदंडों की रचना करता रहता है इसलिए मैरिल ने कहा है कि मानव मानदंडों का निर्माण करने वाला प्राणी है।

विभिन्न सामाजिक स्थितियों में विभिन्न प्रस्थितियों के व्यक्तियों के मध्य परस्पर अन्तःक्रिया होती रहती है, इन व्यक्तियों के मध्य अन्तःक्रिया निर्धारित सामाजिक मानदंडों के आधार पर होती है। हमारे दैनिक जीवन के सभी आयाम लघु अथवा महत् मानदंडों पर निर्भर करते हैं। अध्यापक एवं विद्यार्थियों के बीच परस्पर अभिवादन के तरीकों जैसे लघु मानदंडों से लेकर व्यक्ति की व्यक्तिगत संपत्ति पर उसका अधिकार व उपभोग जैसे महत् मानदंड हमारे जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करते हैं। अगर हम इन मानदंडों की गणना आरंभ करें तो उनकी संख्या अपरिमित सी लगेगी। खाने–पीने के तरीके, कपड़े पहिनने की शैली, बातचीत का तौर–तरीका, व्यवसाय में अपने पदानुरूप व्यवहार से लेकर कई मानदंड संस्थात्मक स्वरूप प्राप्त कर विवाह, परिवार जैसी सार्वभौमिक संस्थाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। ये मानदंड, समाज का संगठन, व्यवस्था व संचालन इस तरह से करते हैं जिससे कि समाज की निरंतरता बनी रहे एवं विभिन्न व्यक्ति अपने लक्ष्यों को विधिवत् रूप से प्राप्त करने में सफल हों। मानदंडों का निर्माण, संचित अनुभव, विश्वास, आस्था, तर्क व अन्तःक्रिया के माध्यम से होता है।

प्रश्न यह उठता है कि क्या समाज द्वारा निर्धारित मानदंडों का हमेशा पालन होता है? डेविस ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए लिखा है कि प्रत्येक समाज में दो प्रकार की वास्तविकताएं पायी जाती हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. आदर्शात्मक व्यवस्था (Normative order)
2. यथार्थ व्यवहार (Factual order)

आदर्शात्मक व्यवस्था बतलाती है कि किस प्रकार से व्यवहार करना चाहिए अर्थात् आदर्शात्मक व्यवस्था ''क्या होना चाहिए'' की व्याख्या है। दूसरे शब्दों में, समाज अपने सदस्यों से जो अपेक्षाएँ रखता है वे आदर्श व्यवस्था का रूप है। उदाहरण के लिए, रेल्वे स्टेशन पर टिकिट लेने वाले व्यक्तियों से ये अपेक्षा की जाती है कि वे व्यवस्था रखने के लिए पंक्ति में खड़े होकर टिकिट लें। इसके अतिरिक्त समाज में एक दूसरे प्रकार की भी वास्तविकता पायी जाती है जो यथार्थ व्यवहार का बोध कराती है, वहाँ यथार्थ व्यवहार यह बताता है कि वास्तव में किस प्रकार का व्यवहार होता है। यथार्थ व्यवहार दो प्रकार का हो सकता है :

1. सामाजिक मानदंडों के अनुरूप (Inconfirmity with social norms)
2. सामाजिक मानदंडों के प्रतिकूल (In non-confirmity with social norms)

अर्थात् वास्तविक स्थिति में व्यक्ति सामाजिक मानदंडों के अनुकूल भी व्यवहार कर सकते हैं तथा सामाजिक मानदंडों के प्रतिकूल भी। जब तक सामाजिक मानदंडों के अनुकूल व्यवहार होता है तब तक तो समाज में व्यवस्था बनी रहती है, किंतु जब सामाजिक मानदंडों का उल्लंघन होने लगता है तो समाज में दुर्खीम के शब्दों में, अमानदंडता की स्थिति आ जाती

है जिससे समाज विघटित होने लगता है। कहने का तात्पर्य यह कि उस समाज में सामाजिक मानदंड तो होते हैं किंतु उनके निरंतर उल्लंघन से अमानदंडता की स्थिति आ जाती है जिससे अस्वस्थ समाज का निर्माण होता चला जाता है।

यह सही है कि यथार्थ व्यवहार का मूल्यांकन आदर्शात्मक अवस्था को मानदंड मान कर होता है। कोई भी व्यवहार सामाजिक है या नहीं, यह आदर्शात्मक व्यवस्था से निश्चित होता है। यह भी सही है कि यथार्थ व्यवहार को आदर्शात्मक व्यवहार नियंत्रित करता है, किंतु अनेक बार यथार्थ व्यवहार आदर्शात्मक व्यवहार को भी नियंत्रित रखता है। यदि हमारे आदर्श अव्यावहारिक होंगे तो हमारे वास्तविक व्यवहार में उनका पालन नहीं होगा जिसके फलस्वरूप आदर्शात्मक व्यवहार की बात निरर्थक हो जाएगी।

सामाजिक मानदंड किसी भी स्वस्थ समाज की रीढ़ है। बिना सामाजिक मानदंडों के समाज का ढांचा सीधा खड़ा नहीं रह सकता।

सामाजिक मानदंड (आदर्श नियम) का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and definition of social norms)

सामाजिक मानदंड समाज के वे नियम हैं जो समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं, जिनका पालन समाज के अधिकांश व्यक्ति करते हैं, जो हमारे व्यवहारों पर नियंत्रण रखते हैं और जो हमें उचित अनुचित का भेद बताते हैं जिनका पालन करने पर समाज उचित पुरस्कार देता है और उल्लंघन करने पर दंड की व्यवस्था की जाती है। सरल शब्दों में समाज में आचरण के नियम ही सामाजिक मानदंड कहलाते हैं। सामाजिक मानदंडों को परिभाषित करते हुए किंगसले डेविस लिखते हैं, 'आदर्श नियम एक प्रकार के नियंत्रण है। मानव समाज इन्हीं नियंत्रणों के बल पर अपने सदस्यों के व्यवहार पर इस प्रकार अंकुश रखता है जिससे वे सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में कार्य करते रहे, भले ही उनकी प्राणीशास्त्रीय आवश्यकताओं में इससे बाधा पहुंचती हो। प्रो. डेविस की परिभाषा से स्पष्ट होता है कि सामाजिक मानदंड या आदर्श नियम मानव व्यवहारों को नियंत्रित करने वाले साधन हैं, इनके द्वारा मानव की मूल प्रवृत्तियों पर अंकुश रखने और उन्हें समाज के अनुकूल कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

वुड्स के अनुसार ''सामाजिक मानदंड वे नियम हैं जो मानव व्यवहार को नियंत्रित करते हैं, व्यवस्था में सहयोग देते हैं तथा किसी विशेष स्थिति में व्यवहार की भविष्यवाणी करना संभव बनाते हैं। वुडस की परिभाषा में भी सामाजिक प्रतिमानों को नियंत्रण के रूप में स्वीकार किया गया है। नियंत्रण के द्वारा ही समाज को व्यवस्थित करने में सामाजिक मानदंड सहयोग देते हैं। चूंकि समाज में मानदंड पूर्व निश्चित होते हैं इसलिए हम इनके आधार पर मानव व्यवहार की भविष्यवाणी भी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, बड़ों को नमस्कार करना सामाजिक मानदंड है। अतः दिन में पहली बार जब एक छात्र अपने गुरु से, पुत्र अपने पिता से, बाबू अपने अधिकारी से मिलेगा तो कैसा व्यवहार करेगा हम इसकी भविष्यवाणी कर सकते हैं।

किम्बाल यंग लिखते हैं, ''सामाजिक मानदंड समूह की अपेक्षाएँ हैं।'' इस परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रत्येक समूह या समाज अपने सदस्यों से कुछ आशाएँ एवं अपेक्षाएँ रखता है कि उन्हें किन परिस्थितियों में क्या करना चाहिए। ये अपेक्षाएँ समाज द्वारा मान्य होती है और इन्हीं के अनुसार मानव का व्यवहार नियमित एवं संचालित होता हैं। समाज स्वीकृत इन अपेक्षाओं को ही सामाजिक मानदंड कहते हैं।

राबर्ट बीरस्टीड के अनुसार, ''सामाजिक मानदंड, संक्षेप में कार्य–प्रणालियों की प्रमाणित विधियां हैं। कार्य सम्पन्न करने का एक तरीका है जो हमारे समाज द्वारा स्वीकृत है।'' इस प्रकार बीरस्टीड ने मानदंडों की श्रेणी में तीन बातों– नियमों, अपेक्षाओं और प्रमाणित कार्य–प्रणालियों को सम्मिलित किया हैं। सामाजिक मानदंड एक प्रकार के आदर्श नियम हैं जो एक परिस्थिति विशेष में हमारे व्यवहार का मार्ग दर्शन करते हैं। सामाजिक मानदंडों के अनुसार ही समाज हमसे कुछ अपेक्षाएं करता है, अतः सामाजिक मानदंड सामाजिक अपेक्षा भी है। यह हमारे व्यवहार को मापने का एक पैमाना भी है जिसके आधार पर हम यह देख सकते हैं कि हमारा व्यवहार कितना सामाजिक है और कितना समाज विरोधी? सामाजिक मानदंड हमारे आचरण को मार्ग दर्शन देने वाला सांस्कृतिक निर्देश भी है। यह कार्यों को पूरा करने का समाज द्वारा नियोजित तरीका है और सामाजिक नियंत्रण का एक अनिवार्य साधन भी है।

हारालाम्बोस के अनुसार, प्रत्येक संस्कृति में ऐसे निर्देश बड़ी संख्या में पाये जाते हैं जो विशिष्ट परिस्थितियों में व्यवहार को निर्देशित करते हैं। ऐसे निर्देशों को ही मानदंड कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक मानदंड समाज में व्यवहार करने के निश्चित एवं प्रमाणित तरीके हैं जो समाज द्वारा स्वीकृत है और हमारे जीवन के हर क्षेत्र में विद्यमान है। उदाहरण के लिए, पत्र लिखने का एक तरीका है कि हम सर्वप्रथम अपना नाम स्थान व दिनांक आदि लिखें। उसके बाद अभिवादन के लिए, 'पूज्य पिताजी', 'प्रिय बंधु', 'मान्यवर' आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं और अंत में अपने हस्ताक्षर करते हैं। यदि हम पत्र लिखने के इन नियमों का पालन न करें तो असुविधा होगी। सामाजिक मानदंड जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पाये जाते हैं, उनकी संख्या अनगिनत है, इनकी सूची बनाना कठिन है। खाने–पीने, उठने–बैठने, नृत्य करने, वस्त्र पहनने, लिखने, गाने, बोलने, स्वागत करने, विदा करने आदि सभी से संबंधित सामाजिक मानदंड पाये जाते हैं। ये हमारे व्यवहार के पथ–प्रदर्शक हैं। इनके अभाव में मानव जीवन अव्यवस्थित हो जायेगा। इनके पालन से हम परिष्कृत होते हैं। इनका पालन करने पर समाज प्रशंसा करता है और

इनके विपरीत आचरण कर निंदा। ये हमारे व्यवहार को नियंत्रित करते हैं तथा सामाजिक संबंधों को नियमित करते हैं एवं समाज व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करते हैं।

सामाजिक मानदंडों की विशेषताएँ (CHARACTERSTICS OF SOCIAL NORMS)

सामाजिक मानदंडों की प्रकृति को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम यहां उनकी विशेषताओं का उल्लेख करेंगे–

1. सामाजिक मानदंड का अर्थ उन सामाजिक नियमों से है जिनका पालन करने की अपेक्षा समाज के सभी सदस्यों से की जाती है।
2. सामाजिक मानदंडों में अनेक छोटे एवं बड़े नियम और उपनियम होते हैं।
3. सामाजिक मानदंड सभी समाजों में अनिवार्य रूप से पाये जाते हैं। हम ऐसे मानव समाज की कल्पना नहीं कर सकते हैं जिसके कोई आदर्श नियम न हो।
4. मानव समाज की आदर्श व्यवस्था लाखों वर्ष पुरानी है। इसका विकास मानव समाज के एक अंग के रूप में हुआ है क्योंकि यह मौलिक सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति में सहायक है। सामाजिक मानदंड मानव समाज के साथ ही उत्पन्न हुए हैं।
5. सामाजिक मानदंड भिन्न–भिन्न मानव समूह के बीच उत्पन्न होने वाले संघर्षों में सामाजिक अस्तित्व की रक्षा करते हैं।
6. सामाजिक मानदंडों का पालन बाह्य दबाव के कारण ही नहीं किया जाता वरन् इसलिए भी किया जाता है कि लंबे समय से उनका पालन करने के कारण वे मानव व्यवहार के अभिन्न अंग बन चुके हैं और मानव स्वचालित रूप से अपने व्यवहार में आजीवन उनका पालन करता है।
7. सामाजिक मानदंड मानव का पथ–प्रदर्शन करते हैं तथा उसके अपने व अन्य व्यक्तियों के बारे में निर्णयों को निर्धारित करते हैं। सामाजिक मानदंडों के पालन तथा उल्लंघन से ही व्यक्तित्व तथा समाज की बहुत सी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।
8. सामाजिक मानदंड सापेक्ष होते हैं अर्थात् सामाजिक मानदंड सभी व्यक्तियों पर अथवा सभी परिस्थितियों में समान रूप में लागू नहीं होते। उदाहरण के लिए, जो मानदंड स्त्रियों के लिए उचित हैं, वे सदैव ही पुरुषों के लिए भी उचित हों, यह आवश्यक नहीं है। सैनिक से संबंधित मानदंड डॉक्टर के मानदंडों से भिन्न होते हैं। इसी प्रकार से विवाह के मानदंड जन्मोत्सव के मानदंड से भिन्न होते हैं।
9. सामाजिक मानदंड नैतिक कर्तव्य की भावना से संबंधित होते हैं अर्थात् ये यह बताते हैं कि किसी भी व्यक्ति को विद्यमान परिस्थितियों के अनुसार ही कुछ विशेष प्रकार के व्यवहार करने चाहिए, अवश्य करने चाहिए अथवा अनिवार्य रूप से करने चाहिए। इनमें कर्तव्य पालन की भावना निहित है।
10. सामाजिक मानदंडों में विकल्प भी होते हैं। वे यह संकेत करते हैं कि किसी एक मानदंड की तुलना में दूसरा कौनसा मानदंड चुनना चाहिए लेकिन पूर्णतया किसी एक मानदंड को चुनने के लिए व्यक्ति को बाध्य नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए, सभ्य समाज से यह अपेक्षा की जाती है कि व्यक्ति अपनी दाढ़ी बनाये। किंतु यह व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है कि वह सेफटीरेजर, उस्तरा या बिजली की मशीन में से किसका प्रयोग करें। किसी एक का प्रयोग करने के लिए उस पर दबाव नहीं डाला जाता है।
11. सामाजिक मानदंड व्यक्ति को प्रभावित करते हैं, साथ ही उनसे प्रभावित भी होते हैं।
12. सामाजिक मानदंड लिखित एवं अलिखित दोनों ही प्रकार के होते हैं। प्रथा, परंपरा, रूढ़ियां एवं फैशन अलिखित सामाजिक मानदंड हैं तो कानून लिखित मानदंड है।
13. सामाजिक मानदंडों का संबंध सामाजिक उपयोगिता एवं आवश्यकताओं से है। अतः आवश्यकताओं के बदलने के साथ–साथ सामाजिक मानदंडों में भी परिवर्तन आता है। समय के साथ यदि उनमें परिवर्तन नहीं होता है तो वे सामाजिक कुरीतियों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।
14. सामाजिक मानदंडों का संबंध समाज की वास्तविक परिस्थितियों से होता है। उदाहरण के लिए, यदि समाज यह मानदंड बना दे कि हर व्यक्ति के पास अपनी कार होनी चाहिए, लेकिन कार खरीदने के पैसे एवं सुविधाओं के अभाव में यह मानदंड व्यर्थ होगा।
15. सामाजिक मानदंड सामाजिक नियंत्रण के वे साधन हैं जो मानवीय व्यवहारों को नियंत्रित एवं व्यवस्थित करते हैं। ये सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में कार्य करते हैं।

सामाजिक मानदंडों (आदर्श नियमों) का वर्गीकरण (Classification of social norms)

सामाजिक मानदंड का विस्तृत विवेचन करने के लिए उनका वर्गीकरण करना आवश्यक है। किंतु उनका व्यवस्थित वर्गीकरण करना एक कठिन कार्य है। सभी समाजशास्त्रियों ने अपनी–अपनी सूची प्रस्तुत की है और उनमें एकमतता का अभाव है। सामाजिक मानदंडों के वर्गीकरण के लिए अपनाये गये कुछ प्रमुख आधार इस प्रकार है :

1. **मान्यता के आधार पर–** कुछ मानदंड ऐसे होते हैं जिनका पालन न करने से समाज उस व्यक्ति की थोड़ी बहुत निंदा कर देता है, जबकि कुछ मानदंडों का पालन बलपूर्वक करवाया जाता है।
2. **महत्व की मात्रा के आधार पर–** कुछ मानदंड समाज

में अधिक महत्वपूर्ण होते हैं जबकि कुछ कम महत्वपूर्ण।

3. **नियमों को क्रियान्वित करने की विधि के आधार पर**– कुछ मानदंडों का पालन कानून द्वारा कराया जाता है जबकि कुछ का पालन लोग अचेतन रूप में करते हैं क्योंकि वे व्यवहार के अंग बन चुके होते हैं।
4. **स्वेच्छा या स्वाभाविकता की मात्रा** के आधार पर।
5. **नियमों की परिवर्तनशीलता की तीव्रता** के आधार पर अर्थात् वे मानदंड जो धीमी गति से बदलते हैं, जैसे रूढ़ियां व प्रथाएं और वे मानदंड जो तेज गति से बदलते हैं जैसे फैशन एवं धुन।

सामाजिक मानदंडों का एक वर्गीकरण सकारात्मक व नकारात्मक है। जिन कार्यों को करने के लिए कहा जाता है, वे सकारात्मक मानदंड हैं, जैसे 'सदा सच बोलना चाहिए'। जिन व्यवहारों को करने की मनाही की जाती है, वे नकारात्मक मानदंड हैं, जैसे 'कभी चोरी नहीं करनी चाहिए।'

सामाजिक मानदंडों का एक वर्गीकरण औपचारिकता एवं अनौपचारिकता के आधार पर किया जाता है। प्रथा, जनरीति, रूढ़ि आदि अनौपचारिक मानदंड हैं, जबकि कानून औपचारिक मानदंड है।

बीरस्टीड ने सामाजिक मानदंडों का वर्गीकरण इस आधार पर भी किया है कि वे किन किन लोगों पर लागू होते हैं। इस आधार पर आपने मानदंडों को दो भागों में बाँटा है : प्रथम, सामुदायिक मानदंड एवं द्वितीय, संघात्मक मानदंड। जिन मानदंडों का संबंध सारे समाज या समुदाय से है, उन्हें सामुदायिक मानदंड कहते हैं जैसे अभिवादन करना, वस्त्र पहनना। दूसरी ओर जिन मानदंडों का संबंध किसी समूह विशेष से ही होता है, उन्हें संघात्मक मानदंड कहते हैं। उदाहरण के लिए शिक्षक को अच्छी तरह पढ़ाना आना चाहिए, यह केवल शिक्षकों तक सीमित है। 'परीक्षा में नकल नहीं करना चाहिए' यह मानदंड छात्रों तक ही सीमित है।

बीरस्टीड ने सभी प्रकार के मानदंडों को तीन श्रेणियों में बांटा है–

1. जनरीतियाँ, 2. रूढ़ियाँ, 3. कानून।

सामाजिक मानदंडों का एक वर्गीकरण इस प्रकार है– 1. निर्धारित मानदंड, 2. अधिमान्य मानदंड, 3. स्वीकृत मानदंड, 4. निषेधात्मक मानदंड। समाज द्वारा जिस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा की जाती है, उसे निर्धारित मानदंड कहते हैं, जैसे सड़क के बायीं ओर चलना चाहिए, पुत्र को पिता की और छात्र को गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए। अधिमान्य मानदंडों में विकल्प होता है और एक की तुलना दूसरे को अच्छा माना जाता है, जैसे माता–पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को शिक्षा दिलायें। इस प्रकार के मानदंडों का पालन करने पर प्रशंसा की जाती है। स्वीकृत मानदंड ऐसे व्यवहार हैं जिन्हें सहन कर लिया जाता है, जैसे अध्यापक के पढ़ाते समय चुपचाप उठकर बाहर आ जाना, किसी भाषण के दौरान खांसी आने पर हल्का खांस लेना। निषेधात्मक मानदंड वे हैं जो हमारे किसी व्यवहार पर रोक लगाते हैं, जैसे माता–पिता यह ध्यान रखें कि बच्चे गली में नंगे नहीं घूमें, मेहमानों के आने पर हम तौलिया लपेट कर नहीं बैठे आदि।

प्रो. किंग्सले डेविस ने सामाजिक मानदंडों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है। जनरीतियां, रूढ़ियाँ, कानून, संस्थाएं, नैतिकता और धर्म, परिपाटी, शिष्टाचार, फैशन एवं धुन। हम यहाँ कुछ प्रमुख सामाजिक मानदंडों का उल्लेख करेंगे।

जनरीतियां अथवा लोकरीतियाँ (Folkways)

जनरीतियां अपेक्षाकृत स्थायी व्यवहार है जिनका पालन करना एक परिस्थिति में आवश्यक माना जाता है। जनरीति का अर्थ लोगों द्वारा अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनाये गये तरीकों से लिया गया है, जिस प्रकार समाज की संस्कृति एवं विचारों में भिन्नता होती है, उसी प्रकार से समाज की जनरीतियां भी भिन्न–भिन्न होती है। जनरीतियों का पालन मनुष्य अचेतन रूप से करता रहता है, इनका विकास स्वतः एवं मानव अनुभवों के आधार पर होता है। इनका निर्माण योजनाबद्ध तरीकों से नहीं होता, अतः ये अनियोजित होती है। सभी युगों तथा संस्कृति की सभी अवस्थाओं में मनुष्यों के समस्त जीवन पर प्रारंभिक नियंत्रण जनरीतियों के एक विशाल समूह से होता रहा है और यह मानव समाज के साथ ही चली आयी है। जनरीतियां मानव की किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति अवश्य करती है। अतः आवश्यकताओं में परिवर्तन होने पर इनमें भी परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार जनरीतियों का उपयोगी पक्ष भी है।

लोकाचार अथवा रूढ़ियाँ (MORES)

सामान्यतः रूढ़ि शब्द का प्रयोग दकियानूसी, पिछड़े एवं बिगड़े हुए प्रथागत व्यवहारों के लिए किया जाता है जबकि 'मूरस' का अर्थ ऐसे व्यवहारों से है जिनमें समूह–कल्याण की भावना होती है। इसलिए हम Mores के लिए रूढ़ियां शब्द के स्थान पर 'लोकाचार' शब्द का ही प्रयोग करेंगे। लोकाचार को स्पष्ट करते हुए समनर के अनुसार– ''लोकाचार से मेरा तात्पर्य ऐसी लोकप्रिय रीतियों और परंपराओं से है जिनमें जनता के इस निर्णय का समावेश हो चुका है कि वे सामाजिक कल्याण में सहायक है और ये व्यक्ति पर यह दबाव डालती है कि वह अपना व्यवहार उनके अनुकूल रखे यद्यपि कोई सत्ता ऐसे करने के लिए बाध्य नहीं करती। लोकाचार मानव व्यवहार के वे मानदंड हैं जिन्हें समूह कल्याणकारी समझता है तथा इसका उल्लंघन करना समाज का अपमान करना समझा जाता है। ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते हैं। जिन्हें बिना किसी विचार अथवा तर्क के स्वीकार कर लिया जाता है।'' इस प्रकार लोकाचार वे सामाजिक व्यवहार हैं जिनकी समूह द्वारा अपेक्षा की जाती है और जो नैतिकता की भावना पर आधारित होते हैं। लोकाचारों में समूह–कल्याण की भावना निहित होती है। इसलिए उन्हें अधिक दृढ़तापूर्वक स्वीकृति प्रदान की जाती

है। समूह द्वारा किसी लोकाचार की भावना के उल्लंघन को बहुत गंभीर समझा जाता है। लोकाचार का संबंध समूह की आधारभूत आवश्यकताओं से होता है। ये सामाजिक नियंत्रण का एक अनौपचारिक साधन है। जनरीतियाँ ही आगे चलकर लोकाचार में परिवर्तित हो जाती है।

प्रथा (CUSTOM)

प्रथा शब्द का प्रयोग ऐसी जनरीतियों के लिए होता है जो समाज में बहुत समय से प्रचलित हों। प्रथा में भी समूह–कल्याण के भाव निहित होते हैं। यही कारण है कि कई बार प्रथा एवं लोकाचार का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में किया जाता है। जब जनरीतियों को पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित किया जाता है तो वे प्रथाओं के नाम से जानी जाती है। प्रथाएँ नवीनता की विरोधी होती हैं और ये कार्य करने के परंपरागत मार्ग पर ही जोर देती है। डेविस के अनुसार, ''प्रथा शब्द विशेषकर उन व्यवहारों की ओर संकेत करता है जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी होता चला आया है, अथवा प्रथाएँ वे व्यवहार हैं जिनका पालन केवल इसलिए किया जाता है कि बीते हुए समय में उनका पालन किया गया था। इस प्रकार यह लोकाचारों की अपेक्षा लोकरीतियों के अधिक निकट हैं, लेकिन यह दोनों के परंपरागत, स्वचालित तथा सामूहिक चरित्र को स्पष्ट करती है। प्रथाएँ हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं, उनमें तर्क होना आवश्यक नहीं हैं।

परंपरा (TRADITION)

मानव को अपने जीवन काल में दो प्रकार की विरासत मिलती है– एक प्राणीशास्त्रीय, जो कि उसे शारीरिक रचना व लक्षण प्रदान करती है। इसे हम वंशानुक्रमण कहते हैं। दूसरी समाज द्वारा प्रदत्त सामाजिक विरासत है जो व्यक्ति के जीवनयापन के लिए अनेक भौतिक और अभौतिक वस्तुएँ प्रदान करती है। घड़ी, पेन, रेडियो, टेलीविजन, पंखा, वस्त्र आदि हजारों प्रकार की वस्तुएँ भौतिक विरासत हैं। धर्म, विचार, दर्शन, प्रथाएँ, नियम, रीति–रिवाज आदि अभौतिक सामाजिक विरासत है। सामाजिक विरासत का अभौतिक पक्ष ही 'परंपरा' कहलाता है।

'Tradition' शब्द की उत्पत्ति 'Tradera' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है, 'हस्तांतरित करना' (Handing down aor Transmission)। 'Tradition' का संस्कृत शब्द परंपरा है जिसका अर्थ है विरासत में मिलना। इस प्रकार परंपरा का संबंध उन बातों से है जो अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही हों और जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होती रही हों। इस संदर्भ में एक बात उल्लेखनीय है कि परंपरा लंबे समय से संरक्षित तो होती है किन्तु यह पूर्णतः अपरिवर्तनशील या नितांत रूढ़िवादी नहीं होती वरन् सामूहिक अनुभवों के अनुरूप इसमें आंशिक रूप में परिवर्तन होता रहता है।

परंपरा को परिभाषित करते हुए गिन्सबर्ग लिखते हैं, ''परंपरा का अर्थ उन संपूर्ण विचारों, आदतों और प्रथाओं के योग से है जो एक समूह की विशेषता है तथा जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती हैं।

रॉस के अनुसार, परंपरा का अर्थ है, चिन्तन और विश्वास करने की विधि का हस्तांतरण।

जेम्स ड्रीवर के अनुसार, ''परंपरा कानून, प्रथा, कहानी और पौराणिक कथाओं का वह संग्रह है जो मौखिक रूप में एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि परंपराएं किसी भी समाज में प्रचलित प्रथाओं व जनरीतियों का संपूर्ण योग है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है। परंपराओं का पालन लोगों द्वारा बिना किसी तर्क वितर्क के स्वतः ही किया जाता है। परंपरा की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. परंपराएँ लंबे समय की देन होती है, उनमें निरंतरता होती है।
2. परंपराएँ पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित की जाती है।
3. परंपराओं का पालन अचेतन रूप से एवं बिना विचारे किया जाता है।
4. परंपराओं में परिवर्तन धीमी गति से होता है।
5. परंपराओं का हस्तांतरण लिखित व मौखिक– किसी भी प्रकार से हो सकता है।
6. परंपराओं में कठोरता पायी जाती है।

परंपराओं का महत्व (Importance of Traditions)

परंपराएँ दृढ़ता की प्रबल शक्ति है। **सिसरो** के अनुसार 'यदि पूर्व की घटनाओं की स्मृतियां वर्तमान को अतीत के साथ सम्बद्ध न करें तो फिर मानव जीवन है ही क्या? परंपरा के बिना मानव जीवन विश्रृंखलित हो जायेगा। मैक्डूगल के अनुसार, –हम जीवितों की अपेक्षा मृतकों से अधिक संबंधित होते हैं। समस्याओं को सुलझाने एवं परिस्थितियों का सामना करने के पुराने ढंगों के आधार पर नये ढंगों की खोज की जा सकती है। परंपरा हमें धैर्य, साहस एवं आत्मविश्वास प्रदान करती है।

1. परंपराएँ सामाजिक जीवन को सरल बनाती है, हमारे व्यवहार का मार्गदर्शन करती है तथा समाजीकरण में योग देती है।
2. परंपराएँ सामाजिक जीवन में एकरूपता लाती है।
3. परंपराएँ व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करती है।
4. ये व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती है।
5. परंपराओं में भूतकाल का अनुभव निहित होता है। अतः हम उनके सहारे नवीन संकटों एवं परिस्थितियों का मुकाबला आसानी से कर सकते हैं।
6. परंपराएँ राष्ट्रीय भावना के विकास में सहायक होती है। गिन्सबर्ग लिखते हैं, 'परंपराएँ राष्ट्रीयता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। परंपरा सामाजिक तनाव को कम करके सामाजिक विकास की एक दिशा निर्धारित

करती है। परंपराओं से सामाजिक व धार्मिक संस्थाओं का अस्तित्व बना रहता है।''

नैतिकता तथा धर्म (Morality and religion)

नैतिकता शब्द कर्तव्य की आंतरिक भावना पर बल देता है अर्थात इसका संबंध सद् और असद् उचित और अनुचित से है। आचार संबंधी नियमों का पालन चरित्र की दृढ़ता और पवित्रता से संबंधित है। नैतिकता का पालन व्यक्ति इसलिए नहीं करता है कि उसके पूर्वज भी प्राचीन काल से ऐसा करते रहे हैं या उसके आस पास के लोग भी उसका पालन कर रहे हैं वरन् इसलिए करता है कि इसके पीछे न्याय, पवित्रता और सच्चाई के भाव होते हैं। नैतिकता का संबंध व्यक्ति के स्वयं के अच्छे और बुरे महसूस करने पर निर्भर करता है। नैतिकता प्रथा की अपेक्षा आत्मचेतना से अधिक प्रेरित होती है। नैतिकता लोकाचारों के अधिक निकट है क्योंकि उनमें भी उचित–अनुचित के भाव होते हैं। नैतिकता जनरीतियों व लोकाचारों की अपेक्षा अधिक स्थायी होती है। इसमें तार्किकता पायी जाती है। गुरविच के अनुसार, ''नैतिकता अत्यधिक गयात्मक, रचनात्मक तथा रूढ़िवादी तत्वों का विरोध करने वाली होती है। न्याय, ईमानदारी, सच्चाई, निष्पक्षता, कर्तव्यपरायणता, अधिकार, स्वतंत्रता, दया और पवित्रता आदि नैतिक धारणाएँ ही हैं।

नैतिकता का संबंध किसी विशिष्ट वर्ग के सामाजिक मानदंडों से भी है। जैसे हम कहते हैं, न्यायाधीश की नैतिकता, डॉक्टर की नैतिकता आदि। बौद्धिक एवं दार्शनिक स्तर पर नैतिकता नीतिशास्त्र या आचारशास्त्र बन जाती है। ''नीति'' शब्द असाधारण विचारकों के अमूर्त चिन्तन का विषय भी रहा है, जैसे हम कहते हैं– अरस्तू का नीतिशास्त्र आदि। नैतिकता का संबंध सामाजिक मूल्यों से है। प्रत्येक समाज के मूल्य एक–दूसरे से भिन्न होते हैं इसलिए प्रत्येक समाज के नैतिकता के नियमों में अंतर पाया जाता है।

नैतिकता का संबंध धर्म से भी है। प्रत्येक धर्म में हमें नैतिक नियम देखने को मिलते हैं। हम नैतिक नियमों का पालन धार्मिक भय के कारण भी करते हैं। क्योंकि कुछ नैतिक नियमों की उत्पत्ति ईश्वरीय एवं अलौकिक मानी जाती है। उनका पालन न करने का अर्थ है– ईश्वर को रूष्ट करना। ऐसा माना जाता है कि ईश्वरीय शक्तियाँ ही नैतिक सिद्धांतों की पुष्टि एवं उनका पोषण करती है। धार्मिक नियमों का पालन करने पर ईश्वर प्रसन्न होता है और पुरस्कार प्रदान करता है और उल्लंघन करने पर नाराज होकर दंड देता है। धार्मिक नियमों का उद्देश्य व्यक्ति को पवित्र आचरण करने का प्रोत्साहन देना और उसे सही रास्ते पर ले जाना है। धर्म में स्वर्ग एवं नरक की कल्पना की गयी है। इनके भय से भी व्यक्ति धार्मिक नियमों का पालन करता है। धार्मिक नियमों को मानना पुण्य है और उससे मुक्ति एवं स्वर्ग प्राप्त होता है जबकि इनके उल्लंघन करने पर पाप लगता है, नरक में जाना होता है। धर्म में तर्क का कोई स्थान नहीं है, वह विश्वास तथा भावनाओं पर जोर देता है।

धर्म सामाजिक जीवन को नियंत्रित एवं निर्देशित करता है। प्रत्येक धर्म में कुछ आदर्श होते हैं, उनके अनुसार आचरण करने की धर्मावलंबियों से अपेक्षा की जाती है। धर्म के महत्व को प्रकट करते हुए डासन के अनुसार, ''मानवता के संपूर्ण इतिहास में धार्मिक नियम सदैव एक महान व्यक्ति का कार्य करते रहे हैं। मानव के भाग्य का निर्माण करने, उसे परिवर्तित करने और व्यक्ति तथा समाज को घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध करने में यह नियम सदैव महत्वपूर्ण रहे हैं। धार्मिक नियमों का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी कि मानव की सामाजिक चेतना। फ्रायड के अनुसार धर्म का मानव के अचेतन मस्तिष्क से संबंध है। धर्म नैतिकता को शक्ति प्रदान करता है और उसका संबंध दैवी शक्ति से जोड़ता है। किंतु सभी नैतिक नियम धर्म में सम्मिलित नहीं होते हैं, कुछ कम महत्वपूर्ण नैतिक नियम धर्मनिरपेक्ष भी होते हैं।

कानून (Law)

सामाजिक मानदंडों में कानून सर्वाधिक शक्तिशाली है। कानून वे नियम हैं जिनके पीछे राज्य की शक्ति होती है।

कानून को परिभाषित करते हुए मैकाइवर लिखते हैं, ''कानून नियमों की वह व्यवस्था है जिन्हें राज्यों के न्यायालयों द्वारा मान्यता प्राप्त होती है, न्यायालयों द्वारा उनकी विवेचना होती है और किसी विशेष परिस्थिति के अनुसार ही इन्हें लागू किया जाता है।''

रॉस के अनुसार, ''कानून मानव व्यवहार को नियंत्रित करने वाले औपचारिक विशिष्ट नियमों का स्वरूप है, जो उन लोगों द्वारा बनाये जाते हैं जिन्हें राज्य में राजनीतिक शक्ति प्राप्त होती है और उन्हीं सत्ताधारियों द्वारा कानून लागू किया जाता है।

हाबल के अनुसार, ''कानून एक सामाजिक नियम है जिसका उल्लंघन होने पर धमकी देने या वास्तव में शारीरिक बल प्रयोग करने का एकाधिकार एक समूह को होता है, जिसे ऐसा करने का समाज द्वारा मान्य विशेषाधिकार प्राप्त है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कानून वे नियम हैं जिन्हें बनाने, लागू करने एवं उनका उल्लंघन करने पर दंड देने की शक्ति समाज के एक संगठित समूह में होती है, जिसे हम सरकार कहते हैं। इस वर्ष में आदिम एवं निरक्षर समाजों में कानून नहीं होते क्योंकि कानून लिखित होते हैं और उनका किसी न किसी रूप में लेखा–जोखा रखा जाता है। कुछ विद्वान इस बात को स्वीकार नहीं करते कि आदिम समाजों में प्रचलित लोकाचारों एवं जनरीतियों आदि को ही आदिम कानून की संज्ञा देते हैं। किंतु यदि हम लोकाचारों, जनरीतियों एवं कानूनों में भेद करना चाहते हैं तो हमें कानून को लिखित एवं औपचारिक नियमों के रूप में स्वीकार करना होगा।

प्रो. डेविस ने कानूनों को दो भागों में बांटा है– प्रथागत कानून और वैधानिक कानून।

प्रथागत कानून (Customary law)

प्रथागत कानून उन समाजों में पाये जाते हैं जिसमें सामाजिक नियमों का पालन करवाने के लिए कोई विशिष्ट संगठन नहीं होते हैं। इस प्रकार के नियमों को प्रथागत कानून इसलिए कहते हैं क्योंकि वे समुदाय की अमर परंपरा के अंश होते हैं। इन्हें लागू करने के लिए कोई वैधानिक संस्था नहीं होती और ये सांस्कृतिक विरासत के भाग होते हैं। इन्हें हम जनरीतियाँ एवं पूर्णतः विकसित कानूनों के बीच की अवस्था कह सकते हैं। प्रो. डेविस के अनुसार 'आरंभ में यदि मानव समाज में कोई विधियां थीं तो वे ऐसी ही प्रथागत विधियाँ थीं। प्रथागत कानून हमें आदिम जातियों एवं कृषक समाजों में देखने को मिलते हैं। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अफ्रीका की बुशमैन तथा होटेण्टोट जनजातियाँ हैं।

वैधानिक कानून (Emacted Law)

जब लोकाचारों के प्रवर्तन के लिए किसी विशेष संगठन का जन्म होता है तब हम उन्हें विधि कहते हैं। आधुनिक जटिल समाजों में केवल जनमत, अनौपचारिक शक्ति और नैतिक चेतना के द्वारा ही व्यवस्था स्थापित नहीं की जा सकती, बल्कि वहाँ किसी प्रकार का राजनैतिक संगठन आवश्यक हो जाता है। जब जनसंख्या एवं राज्य के कार्य क्षेत्र में वृद्धि होती है तो सारे समुदाय से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह अपराधियों को पकड़ने के लिए स्वयं दौड़ पड़े तथा उन्हें दंड दे। इस कारण हमें समाज के नियमों को लागू करने एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिए किसी विशिष्ट संस्था की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए पुलिस की व्यवस्था की जाती है। सामाजिक जीवन में जटिलता एवं विभिन्नता के बढ़ने पर नवीन परिस्थितियों में प्राचीन लोकाचार अनुपयुक्त होते जाते हैं, तब समुदाय के लिए कानून के रूप में नये नियम बनाये जाते हैं। विधान मंडल द्वारा यह कार्य किया जाता है। कानूनों को औपचारिक रूप से लागू किया जाता है, उनकी व्याख्या के लिए वकील होते हैं, उनके उल्लंघन को रोकने के लिए पुलिस एवं जेल व्यवस्था होती है, उनकी रक्षा तथा निर्णय करने के लिए न्यायालय होता है, ये कानून लिखित एवं पूर्णतः परिभाषित होते हैं।

परिपाटी एवं शिष्टाचार (Convention and Etiquette)

परिपाटी एवं शिष्टाचार विशिष्ट प्रकार की लोकरीतियाँ हैं, इनका कोई गहन अर्थ नहीं होता। ये हमारे सामाजिक संबंधों में सरलता उत्पन्न करती हैं। परिपाटी किसी भी कार्य करने का एक परंपरात्मक तरीका है। यह व्यवहार के अपेक्षाकृत एक निश्चित स्वरूप को प्रकट करती हैं जिसका किसी एक विशेष परिस्थिति में पालन किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, भारत में सड़क के बायीं ओर तथा अमरीका में सड़क के दायीं ओर चलना एक परिपाटी है। कोई व्यक्ति यह नहीं सोचता है कि यह एक पवित्र नियम है या इसके पीछे कोई रहस्य निहित है। प्रत्येक व्यक्ति इसका पालन इसलिए करता है कि उसे समाज ने स्वीकार कर लिया है और ऐसा पहले से होता आया है। वह यह भी जानता है कि यदि इस नियम का पालन नहीं किया गया तो सड़क पर चलना खतरनाक हो सकता है। परिपाटी के पालन से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के कार्यों में बाधा डालने से बच जाता है। यह हमारे 'प्रयत्न और भूल' को दूर और मानवीय अंतःक्रियाओं के भ्रम समाप्त करती है। परिपाटी का पालन नैतिक आधार पर नहीं किया जाता वरन् इसलिए किया जाता है कि विभिन्न परिस्थितियों में यह हमारे व्यवहार को सुगम बना देती है, हमारा निर्देशन करती है। परिपाटी हमें पारस्परिक तनावों एवं संघर्षों से भी बचाती है साथ ही परिपाटी सभी लोगों को एक–सा व्यवहार करने को प्रेरित कर व्यवहार में एकरूपता लाने में सहायक होती है।

शिष्टाचार का तात्पर्य किसी कार्य को करने का एक उचित ढंग है। समाज में व्यवहार करने के कई तरीके हो सकते हैं, उनमें से हम एक अच्छा तरीका चुन लेते हैं। इस प्रकार एक कार्य को करने में व्यक्ति के सामने कई विकल्प होते हैं। इनमें प्राथमिकता का क्रम होता है और व्यक्ति सबसे उत्तम तरीके को ही चुनता हैं। उदाहरण के लिए हम अभिवादन कैसे करते है; भोजन किस तरह से करते हैं; वस्त्र किस तरह से पहनते हैं; अपने मित्रों का परिचय किस प्रकार करवाते हैं ये सभी शिष्टाचार को प्रकट करते हैं। शिष्टाचार में व्यक्ति के इरादे को भी देखा जाता हैं। बीरस्टीड ने शिष्टाचार के तीन उद्देश्य बताये हैं– 1. अन्य प्रतिमानों की तरह यह भी कुछ व्यवहारों को स्वीकृत करता है जिसका विशेष अवसरों पर प्रयोग किया जाना चाहिए। 2. यह महत्वपूर्ण सामाजिक विशेषताओं को प्रकट करता है। 3. यह उन लोगों से एक निश्चित सामाजिक दूरी बरतता है जहाँ अधिक परिचय एवं घनिष्ठता नहीं हैं। शिष्टाचार में औपचारिकता अधिक होती हैं और यह उन लोगों के साथ अधिक प्रयुक्त होता है जिनसे घनिष्ठता न हो। शिष्टाचार के आधार पर हम एक व्यक्ति के वर्ग एवं सामाजिक प्रस्थिति का भी निर्धारण कर सकते हैं। शिष्टाचार एक साधन है जिससे समाज के विभिन्न स्तर के व्यक्तियों की पहचान होती है। शिष्टाचार दूसरों के प्रति हमारी बाह्य सद्भावना को भी व्यक्त करता है।

फैशन तथा धुन (Fashion and Fad)

मानव सदैव नवीनता एवं भिन्नता के लिए परिवर्तन चाहता है व प्राचीन आदर्शों के अनुकरण के साथ नवीनता एवं परिवर्तन का प्रेमी होता है। इस विरोधाभास की पूर्ति वह इस प्रकार के सामाजिक मानदंडों द्वारा करता है जो यद्यपि थोड़े समय तक प्रचलन में रहते हैं किंतु जितने समय तक चलते हैं उतने समय तक मनुष्य उनके प्रति निष्ठा दिखलाता है। इन सामाजिक मानदंडों को फैशन, धुन या सनक कहते हैं। जनरीतियाँ, लोकाचार, प्रथा, परंपरा में अपेक्षाकृत स्थायित्व पाया जाता हैं जबकि फैशन पूर्णतः अस्थायी प्रकृति का होता है। स्पेन्सर ने फैशन को प्रथाओं के बीच पाये जाने वाले भेदों

को दूर करने वाला माना है। स्पेन्सर ने कहा है कि जब प्रथाओं का पतन होता है तो फैशन का अधिक प्रचलन होता है। ग्रेबिल टार्डे ने प्रथा व फैशन में भेद किया है आपके अनुसार प्रथा 'पूर्वजों का अनुकरण' है तथा फैशन 'समकालीनों का अनुकरण' है।

किम्बल यंग के अनुसार फैशन वह प्रचलन या फैली हुई रीति, तरीका, कार्य करने का ढंग, अभिव्यक्ति की विशेषता या सांस्कृतिक लक्षणों को प्रस्तुत करने की विधि है जिसे बदलने की आज्ञा स्वयं प्रथा देती है।

स्पष्ट है कि फैशन का संबंध मानवीय व्यवहार से संबंधित एक समाज अथवा समूह की एक समय विशेष में पसंद हैं। यह समय के साथ परिवर्तित होती रहती है। यह परिवर्तन समाज एवं संस्कृति द्वारा स्वीकृत होता है।

सामाजिक मानदंडों का समाजशास्त्रीय महत्व (Sociological Importance of Social Norms)

प्रत्येक समाज में सामाजिक मानदंड पाये जाते हैं जो समाज के सदस्यों के व्यवहारों को एक दिशा प्रदान करते हैं। हम ऐसे समाज की कल्पना नहीं कर सकते जिसमें सामाजिक मानदंडों का अस्तित्व न पाया जाता हो।

1. सामाजिक मानदंड सीखने की प्रक्रिया को सरल बनाते हैं।
2. सामाजिक मानदंड व्यक्ति में समूह के प्रति निष्ठा, उत्साह एवं आकांक्षाओं को जाग्रत करते हैं जो कि व्यक्ति में समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करते हैं।
3. बीरस्टेड ने कहा है कि बिना सामाजिक मानदंडों के सामाजिक संबंध अनियमित और संभवतः खतरनाक हो जायेंगे।
4. सामाजिक मानदंड हमारे व्यवहारों एवं विचारों को प्रभावित करते हैं। इन्हीं के माध्यम से हम अपने व्यवहार को व्यवस्थित तथा समाज के अन्य सदस्यों के अनुकूल बनाते हैं जिससे सामाजिक जीवन के कार्य व्यवस्थित होते हैं।

स्पष्ट है कि सामाजिक मानदंड समाज में व्यवस्था, स्थिरता, समानता एवं एकरूपता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान देने के साथ समाज एवं संस्कृति से अनुकूलन में सहयोग देते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- सामाजिक संस्थाएँ व्यक्तियों एवं समितियों के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निर्मित मान्यता प्राप्त विधियाँ, नियमों की व्यवस्थाएँ अथवा कार्य प्रणालियाँ हैं।
- संस्था की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–
  1. सुपरिभाषित उद्देश्य
  2. स्थायित्व
  3. प्रतीक
  4. नियमों की संरचना
  5. सामूहिक अभिमति
  6. सामूहिक प्रयत्न
  7. अमूर्त व्यवस्था
- संस्थाओं के सामाजिक कार्य एवं महत्व
  - ▲ मानव व्यवहार पर नियंत्रण
  - ▲ संस्कृति के वाहक
  - ▲ व्यक्ति को प्रस्थिति एवं भूमिका प्रदान करना
  - ▲ सामाजिक अनुकूलन में सहायक
  - ▲ आवश्यकताओं की पूर्ति करना
  - ▲ मार्ग दर्शन करना
- मेकाइवर एवं पेज के अनुसार हम समिति के सदस्य होते हैं, न कि संस्थाओं के।
- समिति व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसका निर्माण एक या अनेक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है।
- समिति के चार अनिवार्य तत्व हैं–
  - ▲ व्यक्तियों का समूह
  - ▲ सामान्य उद्देश्य
  - ▲ पारस्परिक सहयोग
  - ▲ ऐच्छिक सदस्यता
  - ▲ अस्थायी प्रकृति
  - ▲ मूर्त संगठन
- संगठन एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें व्यक्तियों के क्रिया–कलाप दूसरों के द्वारा नियोजित होते हैं तथा उनके क्रिया–कलाप लक्ष्योन्मुखी होते हैं। ऐसी व्यवस्था को औपचारिक संगठन कहते हैं।
- औपचारिक संगठन के तीन मूल तत्व होते हैं–
  1. सुपरिभाषित उद्देश्य
  2. आवश्यक संसाधन
  3. स्पष्ट सत्तातंत्र
- संगठन कई प्रकार के होते हैं– करिश्माई नेतृत्व पर आधारित संगठन, सामंती संगठन, नौकरशाही, व्यावसायिक एवं ऐच्छिक संगठन।
- सामाजिक मानदंड समाज में व्यवहार के स्वीकृत नियम हैं।
- सामाजिक मानदंड समाज के सदस्यों के व्यवहारों को नियंत्रित एवं निर्देशित करते हैं।
- सामाजिक मानदंड समय एवं स्थान सापेक्ष होते हैं।
- जनरीतियाँ,, लोकाचार, प्रथाएँ, परंपरा, नैतिकता, परिपाटी, शिष्टाचार, फैशन, धुन इत्यादि सामाजिक मानदंड हैं।
- सामाजिक मूल्य वे सामाजिक मानक, लक्ष्य या आदर्श हैं, जिनका आन्तरीकरण समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. "समिति प्रायः किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों द्वारा मिलकर कार्य करने को कहते हैं।" यह कथन किस समाजशास्त्री का है–

(अ) गिन्सबर्ग (ब) मैकाइवर एवं पेज
(स) गिलिन एवं गिलन (द) बोगार्डस

2. निम्नांकित में से कौन–सी विशेषता समिति से संबंधित है–
(अ) मूर्त संगठन (ब) स्थायित्व
(स) अनिवार्य सदस्यता (द) नियमों की संरचना

3. निम्नांकित में कौन सी समिति है–
(अ) प्रजातंत्र (ब) परिवार
(स) विवाह (द) परीक्षा

4. ''हम समिति के सदस्य होते हैं, संस्था के नहीं।'' यह कथन किस विद्वान का है–
(अ) गिन्सबर्ग (ब) मैकाइवर एवं पेज
(स) बोगार्डस (द) पारसंस

5. निम्नांकित में कौन सी संस्था है–
(अ) परिवार (ब) विवाह
(स) राष्ट्र (द) गांव

6. सामाजिक नियमों के संग्रह को–
(अ) प्रस्थिति कहते हैं (ब) समाज कहते हैं
(स) समिति कहते है (द) संस्था कहते हैं

7. निम्नलिखित में से कौन सी एक समिति है–
(अ) व्यापार संघ (ब) राज्य
(स) टेनिस क्लब (द) उपर्युक्त सभी

8. उन मानकों को क्या कहते हैं जिनके अनुसार व्यक्तियों की अन्तर्क्रियाएं निर्धारित होती हैं–
(अ) मानदंड (आदर्श नियम)
(ब) सामाजिक व्यवस्था
(स) अप्रतिमानता (द) जनमत

9. ''सामाजिक मानदंड समूह की आकांक्षाएँ हैं,'' यह कथन किस विद्वान का है–
(अ) किंग्स्ले डेविस (ब) किम्बल यंग
(स) रोबर्ट बीरस्टीड (द) वुड्स

10. निम्नांकित में से कौनसा मानदंड नहीं है–
(अ) जनरीति (ब) प्रथा
(स) विचलन (द) वैधानिक कानून

11. दैनिक जीवन के व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धांतों को क्या कहा जाता है–
(अ) समुदाय (ब) समिति
(स) सामाजिक व्यवस्था (द) सामाजिक मूल्य

12. सामाजिक मूल्यों में कौनसे तत्व निहित हैं–
(अ) ज्ञानात्मक तत्व (ब) भावात्मक तत्व
(स) क्रियात्मक तत्व (द) उपर्युक्त सभी

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. समिति को परिभाषित कीजिए।
2. संस्था को परिभाषित कीजिए।
3. हम समिति के सदस्य होते हैं न कि संस्था के। किसने कहा है?
4. संगठन से आप क्या समझते हैं?
5. औपचारिक संगठन किसे कहते हैं?
6. मूल्य को परिभाषित कीजिए।
7. सामाजिक मानदंड की परिभाषा दीजिए।
8. फैशन किसे कहते हैं?
9. शिष्टाचार का क्या अर्थ है?
10. नैतिकता से आप क्या समझते हैं?
11. जनरीति को परिभाषित कीजिए।
12. प्रथाएँ किसे कहते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. समिति की विशेषताएँ बतलाइये।
2. संस्था की विशेषताएँ बतलाइये।
3. संगठन की विशेषताओं का उल्लेख करें।
4. सामाजिक मानदंडों की विशेषताएँ बताइये?
5. मूल्यों की विशेषताएँ बताइये?
6. मूल्यों के प्रकारों का उल्लेख करें।
7. समिति एवं संस्था में दो अंतर बताइये।
8. जनरीति की विशेषताएँ बताइये।
9. परंपरा की विशेषताएँ बताइये।
10. प्रथाओं की विशेषताएँ बताइये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. संस्था को परिभाषित कीजिए तथा संस्था की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख करें।
2. समिति से आप क्या समझते हैं? समिति की विशेषताओं की विस्तृत रूप से व्याख्या कीजिए।
3. मूल्यों को परिभाषित करते हुऐ मूल्यों की विभिन्न विशेषताओं का विस्तृत रूप से विवेचन करें।
4. सामाजिक मानदंडों से आप क्या समझते हैं? सामाजिक मानदंडों के विभिन्न प्रकारों की विवेचन कीजिए।

उत्तरमाला–1. (द) 2. (अ) 3. (ब) 4. (ब) 5. (ब) 6. (द) 7. (द) 8. (अ) 9. (ब) 10. (स) 11. (द) 12. (द)